



# कबीर के धार्मिक विश्वास

डा० घमण्ड मैनी,  
एम ए, पी-एच् डा,  
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय,  
लुधियाना ।

द्वितीय  
भारतेन्दु भवन,  
सेक्टर—१५ ए, लुधियाना

प्रकाशक

डॉ० धर्मपाल मनी

ह १ ५०, सीक्टर १४,

पण्डीगढ़ ३

मूल्य ३ ७५

मुद्रक :

१ धर्म प्रिंटिंग प्रेस  
निकमसन रोड अम्बामा छाबनी ।

## समर्पण

‘भैरो बहुरिया का  
कमला नाउ रे।’

—धमपास



## दो शब्द

प्रायुष्मान् डा० धर्मपाल मंत्री की पुस्तक 'कबीर के धार्मिक विश्वास' कबीर साहित्य के अध्ययन का एक नवीन प्रयास है। डा० मंत्री ने कबीर के धार्मिक विश्वासों की बहुत कुशलता के साथ स्पष्ट किया है और सहानुभूति के साथ मूल्यांकन किया है। कबीर भारतीय धर्म-साधना के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। वे उन मार्गदर्शकों में हैं जिनके बारे में बार-बार सिखा जायेगा, फिर भी सिखन को कुछ रह ही जायेगा। मुझे पसन्नता है कि डा० मंत्री ने नये सिरे से उनके धार्मिक विश्वासों का मूल्यांकन किया है। आशा है धर्म-साधना के विज्ञान इस पुस्तक का स्वागत करेंगे परमात्मा से प्रार्थना है कि वे डा० मंत्री को दीर्घ आयु और पूरा स्वास्थ्य दें, ताकि वे इस क्षेत्र में अधिकारिक कार्य करते रहें और नये प्रयत्न करते रहें।

पण्डीगढ़  
६ १०-६४

हजारी प्रसाद द्विवेदी







क्या नहीं उपलब्ध ? बौद्धिक कल्पना से अनुभूति का भी अनुमान सगामे का प्रयत्न किया है। यहाँ उसकी अनुभूति नहीं, उसकी भी अनिश्चितता में उपलब्ध-निम्न साधन स्वरूप धार्मिक विश्वासों को समझने के प्रयत्न में विश्वास के माध्यम से बौद्धिक-सम्बद्धता के प्रतिरिक्त लेखक का अपना कुछ भी नहीं और उसमें भी बौद्धिक पाठक का बहुत-सी अंतर्गतियों से परिचय होगा, विश्वास-परायण की दृष्टि उस पर नहीं भी पड़ सकती।

‘विश्व-सरकार’ के इस युग में एक ही ‘मानव-धर्म’ की भी आवश्यकता है। कबीर के माध्यम से इन सन्तों की मान्यताओं में—सगता है, इस ‘मानव-धर्म’ के तत्त्व ही संगृहीत हुए हैं। और सच पूछा जाये तो ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ (सारा विश्व ही एक परिवार है) का उद्घोष करने वाली भारतीय संस्कृति की धारणा का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाले ये सन्त ही हैं जिन्होंने धर्म, धर्म, धर्म और जाति के किसी भी वर्ग को स्वीकार किए बिना क्रियात्मक जीवन के माध्यम से अपना संदेश प्रसारित किया है। आज विश्व को ऐसे ही आभरण प्रभाव, उदार, निरद्वेष और निष्कलुष व्यक्तियों की आवश्यकता है। शायद इनके धार्मिक विश्वास ऐसे व्यक्तियों के उद्भूत होने के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में कुछ सहायक हो सकें।

भारतीय साहित्य में प्रधान रूप से और हिन्दी-साहित्य में प्रथम और प्रमुख रूप से कबीर के अनुभूति-परक व्यक्तित्व से सहज भारतीयता अनुभव करने वाले गुस्वर प्राचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ‘कबीर’ आज भी मूर्धन्य है और एक

युग तक बना रहेगा। प्रत्यक्ष गुरु और उनकी कृति की प्रेरणा के बावजूद भी लेखक की अशक्त अभिव्यक्ति उसकी सीमित सामर्थ्य और धर्म की वरिष्ठाविका है। फिर भी इस कृति की भावदयकता क्यों? चायद इनलिए कि यह इस प्रकार के महान साहित्य तक पहुँचने और उसे समझकर अपनापने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण कर सब और साधन भी बन सकें। साहित्यिक अगत में लेखक का यह एक धन्य विश्वास-परायण पग-भिन्न है।

..प्रायः प्र स अम्वासा क सहयोग तथा भाषा-विभाग पञ्जाब के धनुदान को भी लेखक सामार स्वीकार करता है।

—लेखक

क्या नहीं उपलब्ध ? बौद्धिक कल्पना से अनुभूति का भी अनुमान लगाने का प्रयत्न किया है। यहाँ उसकी अनुभूति नहीं, उसकी भी व्यक्ति में उपलब्ध निम्न साधन स्वरूप धार्मिक विश्वासों को समझने के प्रयत्न में विश्वास के माध्यम से बौद्धिक-सम्बद्धता के प्रतिरिक्त लेखक का अपना कुछ भी नहीं और उसमें भी बौद्धिक पाठक का-घट्ट-ती असंगतियों से परिचय होगा, विश्वास-परायण की दृष्टि उन पर नहीं भी पड़ सकती।

विश्व-सरकार' के इस युग में एक ही 'मानव-धर्म' की भी आवश्यकता है। कबीर के माध्यम से इन सन्तों की आत्मताओं में—सगता है, इस 'मानव-धर्म' के तत्व ही संगृहीत हुए हैं। और सब पूछा जावे, तो बसुधै कुटुम्ब कम्' (सारा विश्व ही एक परिवार है) का उद्घोष करने वाली भारतीय संस्कृति की आत्मा का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाले ये सन्त ही हैं जिन्होंने धर्म, धर्म, कर्म और धर्म के किसी भी वर्ग को स्वीकार किए बिना जिन्यात्मक जीवन के माध्यम से अपना सन्देश प्रसारित किया है। आज विश्व को ऐसे ही आचरण प्रथम उदार, निष्कल और निष्कलुष व्यक्तियों की आवश्यकता है। शायद इनके धार्मिक विश्वास ऐसे व्यक्तियों के उद्भूत होने के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में कुछ सहायक हो सकें।

भारतीय साहित्य में प्रथम रूप से और हिन्दी-साहित्य में प्रथम और प्रमुख रूप से कबीर के अनुभूति-परक व्यक्तित्व से सहज भारतीयता अनुभव करने वाले गुस्वर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'कबीर' आज भी मूर्धन्य है और एक

तुम तक बना रहेगा। प्रत्यक्ष गुरु और उनकी कृति की प्रेरणा के बावजूद भी लेखक की अद्यतत अभिव्यक्ति उसकी सीमित सामर्थ्य और क्षमता की परिचायिका है। फिर भी इस कृति की आवश्यकता क्यों? शायद इसलिए कि यह इस प्रश्न के महान साहित्य तक पहुँचने और उसे समझकर अपमाने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण कर सके और साधन भी बन सके। साहित्यिक जगत में लेखक का यह एक अन्य विस्वास-परायण पग चिह्न है।

शायद प्र.स. अध्यात्म के सहयोग तथा भाषा विभाग, पंजाब के अनुदान को भी लेखक सामार स्वीकार करता है।

—लेखक

सन्तों के धार्मिक विश्वास

भाग १

## कबीर के धार्मिक विश्वास

१ कबीर

व्यक्तित्व, ऐतिहासिक परिचय जन्म-मृत्यु का समय व स्थान, आठि गुरु, परिवार, व्यवसाय, जीवन सघर्ष, गुरु भाई के शिष्य परम्परा ।

११

२ धर्म :

भावश्यक तत्व, सक्षण, परिभार्या, दो पक्ष (सिद्धान्त व भाषार), मानव धर्म, युग की पुकार, कबीर का धर्म सामान्य विशेषताएँ ।

१४-१६

३ शब्द-माहात्म्य-आविभाव :

शब्द—नेति अजमा अनादि अगम, अक्षय्य, असाह, अनन्त अनन्तर (अक्षर), अरेख, अरूप, असीम, अतनुमेय असम, अनुपम, अत्याज्य, अनेक, अगाप्य अमूर्त्य अषट (अक्षरीरी), अष्टस्य (अगोचर), अक्षय्य, अपठष अक्षय्य, अस्वाद्य, अक्षय्य, अतः अतीन्द्रिय, अकल्प्य, अक्षय्य अक्षय्य, अक्षय्य, असाध्य, केवस अतुभूतिगम्य ।

विगुंथ—निराकार, निरकार, निरंजन, निरदानो  
निर्विकार, निर्मम निर्दोष, निरधर (सदास्थायी) ।

भवन्तत्त्व—सर्वश्रियामी, सबस्वामी, सबदानी सबरूप  
सबकर्ता सदा स्थायी, सदा एक रूप (समरूप) अतः  
सब श्रेष्ठ, एकमात्र सत्य ।

धोक्क गुण—रूपामु रक्षक, भवतारक ज्योति  
प्रकारक, अदृश्य परन्तु अनुभूति गम्य ।

अक्ष ही शक्ति—एक देखीय न होकर सबव्यापक केवल  
अन्तर में प्राप्य ।

अक्ष का स्वरूप—अतीन्द्रिय, गुणातीत अतः निगुण,  
निराकार ।

अक्ष का सम्बन्ध—आत्मा से, अंध होते हुए भी ऐक्य,  
जीव से, फकीर से, गुण से सत एवं अक्ष से, माया से  
सृष्टि से ।

२०-१८

#### ४ सृष्टि

निर्माण, रचना प्रक्रिया, अस्थिर, बदलर ।

जीवन्मा—उत्पत्ति, ब्रह्म का अंध, स्पृष्ट से सूक्ष्म का  
विकास, परवत्त जीव, दार्शनिक देह जीवन सांसारिक  
सम्बन्ध, योनि भ्रमण, गुण अन्त अक्ष ।

४३ ६५

#### ५ कर्पीर का साध्य

माया से रक्षा, रम से रक्षा, भव-बन्धन का माघ-भव  
पार साधनगमन रहित होना (मोक्ष प्राप्ति), भगवत्  
प्राप्ति-ब्रह्मज्ञान ब्रह्मरसपान—ब्रह्मानुभूति, साध्य का

भी साम्य, तत्समीनता एवं पूष ऐक्य (ब्रह्म से)  
 महावक इण्डिबर्डी—नाम की सार्धकथा, मगवत्कृपा  
 सत्युक्त, नाम जप सिमरन भक्ति, भ्रमभ्य धनवरण व  
 तीव्र-पूष आत्म समर्पण ।

विषयम कः एव साधन—ज्ञान, योग, पवित्रमन, सत्संगति,  
 हरि सेवा ।  
 ६ अवरोधक शक्तियाँ

६६-१०३

भारम्भ-माया-कंचन कामिनी, विषय, इन्द्रियाँ, मन  
 अहंकार, दुःख, दुःखकर्म, दुःखसंगति ।

साक्षात्कार—भारम्भ, पूजा स्नान तीर्थ, व्रत, उपवास,  
 श्राद्ध माक्षा तिलक शारीरिक साधना वेदपाठ,  
 पुस्तकी विद्या जप बाह्य भेष, वन निवास विसावटी  
 पवित्रता, मुस्ता, मस्जिद, बाग वज्र, नमाज, तसबीह  
 इबादत रोजा, हज ।

सामाजिक एकता—शूद्राशूद्र का विरोध, जात-जात का  
 प्रभेद मानव की एक ही जाति ।

७ सन्तों की सामान्य मान्यताएँ :

१०४ १२७

१२८-१४१

## व्यक्तित्व

परम्परीय मान्यताओं में कान्ति उत्पन्न करने वाला व्यक्तित्व महान् होता है और कबीर ने भी अपने युग में यही किया था। उसका व्यक्तित्व ज्ञान, भक्ति और कर्म की सामग्री के उस अनुपात से तैयार हुआ था, जिसे उसके बाद सम्भवतः ब्रह्म भी भूल गया। उसका ज्ञान पढ़ाई का नहीं, गुढ़ाई का ज्ञान था अन्त ज्ञान या स्वतः उद्भूत ज्ञान था। बन्ध की भाँति मूढ को तो ज्योतिष होने के लिए ज्योति की आवश्यकता नहीं, वह स्वतः अग्नि विण्ड जो है। कबीर को भक्ति अनुभव और अनुभव ही, जिसका आधार ही उनकी अनुभूति। अनुभूति भी धार्मिक के रहस्यवादी कवियों जैसी काल्पनिक नहीं, अपितु अनुभूत अनुभूति। उनका कर्म या क्रियात्मक। निष्काम कर्मव्य प्रीति उनका आधार नहीं उनका दैनिक व्यावहारिक जीवन था। यह कहना भूल है कि कबीर ने उपदेश दिया था उसने तो केवल सन्देश दिया था, अपनी आत्मा का—अनुभूति को अभिव्यक्ति के माध्यम से। वह ऐसा जुमाहा या जैसा न हुआ है न होगा। उसने जो बन्ध तैयार किया वह भी उसके व्यक्तित्व की तरह अनुभव ही उसकी बाणियों ने मूर्तों से बना हुआ वह मानव-धर्म सत्य नित्य एवं कल्याणकारी वह धार्मिक बन्ध है जिसे युग युग तक मानव मात्र धारण रहे, पर सम्भवतः अपना न सके। कबीर के बन्धों को छोड़ कर अपना न सके भी उसी की तरह धर्म हाँ गम है और होते



रहेंगे। भारतीय मनीषाके अतिशय पर रबोन्द्र गान्धा और अरविन्द ऐसी ही तीन विभूतियाँ अभी विमुक्त हुई हैं। जो हो न हिन्दू न मुसलमान जात से मनुष्य न योगी न भोगी—कम से कोरी, न राजा न शासक—समाज के नियन्ता न भानी न भक्त—केवल सत्त और संसार के लिए जो न अपने न मरे (क्योंकि किम्बदन्ती के अनुसार ब्रह्म के बदले उन्हें पहचानारा साम्राज के पास पाया गया था तथा मृत्यु के समय आदर के के नीचे फूस ही मिले थे, जिन्हें हिन्दू और मुसलमानों ने धाधा धाधा बाँट लिया था)। ऐतिहासिक भौतिक दृष्टि से तो यह सत्य ही है कि दशम आत्माएँ युग की आवश्यता नुसार अवतरित होती हैं और समय की पुकार का समुचित उत्तर देकर तिरोहित हो जाती हैं। धपन कृत्यों व कृतियों का माध्यम से वे धमर होती हैं। जुसाहे का कपड़ा भी उतना ही मजबूत है, जितना विश्व के जुसाहे का। उसने भी मूख और अन्ध की अरकियों से विद्व-वस्त्र का निर्माण किया था।<sup>1</sup> कोरी ही कोरी की जान सकता है। कबीर की वाणी इसका जबसत्त प्रमाण है।

हिन्दू संभार और मुस्लिम प्रभाव में पोषित वामनजीवो वक्ष में कबीर उत्पन्न हुए थे यह प्राय सभी विद्वानों को माग्य है। यह बात और है, कि कुछ उन्हें हिन्दू परिवार की देन और मुस्लिम जुलाहा परिवार में पोषित समझते हैं, तथा दूसरे पूर्वतः मुस्लिम परिवार का ही रत्न मानते हैं।

इसी प्रकार उनके जन्म और मृत्यु के विषय में कई मत हैं और उपयुक्त प्रमाणों के अभाव में विद्वान किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं।

सम्बत् १४५५ कबीर की जाक-प्रसिद्ध जन्म तिथि है। कुछ विद्वानों ने रामानन्द की मृत्यु तिथि का अनुमान पन्द्रहवीं सताब्दी के आरम्भ में किया है और उसका शिष्य होने के कारण कबीर की जन्म तिथि को भी वहाँ तक ले जाने का प्रयत्न किया, लेकिन कितना प्रबल प्रमाण के अभाव में उनकी यह धारणा न तो विद्वानों में ही मान्यता प्राप्त कर सकी और न ही साधारण पाठक को अचिन्त्य-पूर्ण प्रतीत हुई। इस लिये कबीर की परम्परागत जन्म तिथि सम्बत् १४५५ ही अधिक मान्य है।

उनकी मृत्यु तिथि के विषय में इससे भी अधिक मत-भेद है, जिसका आधार अन्यान्य अनुमान है। थडामुं पंथ अनुयायियों के अनुसार उन्होंने १०० वर्ष की आयु पाई थी और उनकी मृत्यु सम्बत् १५०५ में मगहर में हुई थी। इस विश्वास के आधार-निम्न दोहे की प्रामाणिकता के विषय में अमा अनुसन्धान की विरोध आवश्यकता है—

संवत् पन्द्रह सौ पड़तरा, कियो मगहर को गोन।  
माघ सुदो एकादमा, रगो पोन में पोन ॥'

जवाब बिजसों छां न कबीर का स्मारक सम्बत् १५०५ में बनव या बा इस मत को मानने वालों ने उनका निघम काम यही स्वीकार किया है। और संवत् १५५३ में गुरु मानक ने उनकी भेट की प्रामाणिक मानकर कुछ विद्वानों

कह कर 'भगवद्भक्त' नामक एक नई जाति का निर्माण कर लिया था जिसके कदार उज्ज्वलतम रत्न थे। लेकिन हिन्दू और मुसलमान कोरी तथा जुमाहा जातियों के बचकर में पड़ने वाले प्राधुनिक युग के बौद्धिकों ने उन्हें तर्क बिनक के बचकर में फँसा कर एक विशेष जाति के बचन में बाँधने का प्रयत्न किया है।

पूरा बाह्यतः से कासी का जुमाहा बूझदू मोर गिघाना।

इसी प्रकार कई बार उन्होंने धरम जुमाहा कहने में ही गौरव धनुसक किया, और कहीं कहीं उन्होंने धरम को 'कोरी' भी कहा है। मूसत वोनो ही वयन-जीवी है। धरम के बौद्धिक धनुसकित्मुधों ने यह भेद करने में देर नहीं लयाई, कि ये जुमाहे मुसलमान थे और कोरी हिन्दू। फिर भी कबीर दोनों में से किस वर्ग में हुए, यह म्गड़ा बना ही रहा। स्वामी रामानन्द के धरमोवाँद से बियवा धरमो की कोस से जन्म सेना तथा मुस्लिम मीर जुमाहा दम्पति द्वारा उसका पोषित होना—दोनों ही प्रसिद्ध किबदन्तियाँ हैं। धरमो हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—कबीरदास जिस जुमाहा जाति में पाषित हुए, वे वह एकाध पुस्त पहले की योगी जीसी किसी प्राधम भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या धरमो होने की राह में थी<sup>१</sup> यह कह कर उन्होंने योगी या जुमाहा जाति को कोरी या जुमाहा से अधिक महत्त्व प्रदान किया है। मूसत जो बात उन्होंने कही है वह यह है कि हिन्दू संस्कार नाथ पन्थियों के माध्यम से इन योगियों में

घर-घर घोर उम सन्कारों के स्थान पर जिन योगियों में माय पन्धियों के विश्वास ही प्रबल हो गये थे या हा यह थे वे यागी ही धीरे धीरे मुस्लिम धर्म ग्रहण कर रहे थे इस ही बंध में कबीर का पालन पोषण हुआ ।

कृम मिताबर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कबीर का बंध इसका या जिसमें बहुतायत से हिन्दू सम्कार जीवित थे लेकिन उनका आचारों पर अधिक प्रभाव मुसलमानों का था । उनका क्रियात्मक जीवन यमनवीरियों का था जिस पर इन दोनों से भी अधिक माय-पदी योगियों की छाप अधिक प्रतीत होती है । बन्धुत कबीर न अपने को हिन्दू और मुसलमान दोनों से धर्मग स्वीकार किया है इसी लिए उनकी एक मात्र सम्बन्ध जाति थी—मानव और उनका व्यापक और उदार धर्म था—मानवता व्यथन होन आहम्बर एवं ध धरण हान ।

इसके बावजूद भी कि कबीर न गुरु को गोबिंद से भी उच्च-पद प्रदान किया है कुछ विद्वानों ने न जाने यह कैसे स्वीकार कर लिया कि कबीर निगुरे थे । यह बहुत उपयुक्त नहीं प्रतीत होता । निम्न जाति का होन के कारण जब कबीर सोचे-स रामानन्द का दिप्यस्त्र न पा सक ता सीढ़िया पर सेट कर स्नान के लिए घात हुए स्वामी रामानन्द के चरण-स्पर्श में भी उन्होंने राम-नाम की दाया से ली । इस विषयमें मैं कुछ तथ्य ही पा न हा लेकिन राम से अनुप्राणित कबीर के जीवन से इसमें से इस सत्य का गद्य प्रवश्य आता है, कि उन्होंने राम-नाम को दोटा प्रवश्य ली होगी और बहुत सम्भव है कि उनके दीक्षा-गुरु रामानन्द ही रहे

हों। यद्यपि कुछ विद्वानों ने शेष तर्कों को भी उनका गुरु मानने का प्रयत्न किया है लेकिन यह कल्पना बिस्कुल भी संगत नहीं प्रतीत होती सम्भवतः इसी लिए प्रायः सभी विद्वानों ने इस मत को अग्रगण्य घोषित किया और रामानन्द को ही उनका गुरु स्वीकार किया है। यह ठीक है कि सत्संग का उन्होंने कबनी धीर करमी में विशेष महत्त्व स्वीकार किया है और जीवन भर इसके माध्यम से विचारों का आधान प्रदान करते रहे, लेकिन उनके समय जीवन धीर देने का मूल्यांकन करते हुये हमें यह मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि उनके दीक्षा-गुरु रामानन्द ही हो सकते हैं अन्य कोई नहीं।

‘बूढा बंस कबीर का, उपग्या पूत कमाम ।

हरि का सुमरिअ ज्ञादि के, बर छे धाया मास ॥

यदि यह पद प्रामाणिक है तो कबीर के पुत्र भवश्य या धीर यदि पुत्र या तो पत्नी भी भवश्यवसी—यह धीर बात है, कि एक ही थी या दो। जो एक के मरण के बाद धा गई होगी। वस्तुतः जैसे कबीर का जीवन सरल धीर स्पष्ट नहीं था, उसी प्रकार उनके जीवन-सम्बन्धी इतिवत्त भी अस्पष्ट ही हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि कोई उनकी शिष्या मात्र थी। दूसरों का कहना है कि वह उनकी पत्नी थी। तीसरों ने दोनों में बहुत अन्धका समझौता करवा दिया यह कह कर कि पहले या बाद में शिष्या भी रही होगी पर पत्नी अवश्य थी। कहते हैं दूर से घाने वाले साधु प्रतिबि की सूचना पाकर वह कबीर से विशेष प्रभावित हुई थी तभी से

उसके साथ रहने लगी। इस किम्बदन्ती का कुछ सत्य भी उनका इस सम्बन्ध में दिखाई देता है। एक जगह उन्होंने कहा है—

‘पहिनी कश्यपी कुजाति कुससनी।  
 धन को सरुपी मुजाति मुससनी ॥’

इसका धनकी दो स्त्रियाँ होने का अनुमान लगाया गया है, जिसके रूप, गुण का भी वर्णन मिलता है। एक धर्म उद्धरण के आधार पर कुछ विद्वानों ने एक का नाम सोई और दूसरी का धनिया या राम धनिया बताया है। उन्होंने भी कहा है— मरी बहुरिया का धनिया नाउ। यह जगजग निरक्षित प्रताप होता है कि उनकी एक पत्नी तो थी ही और कमास नामक उनका एक पुत्र भी हो। कबीर की माँ उससे बहुत नागाऊ रहती थी क्योंकि वह भौतिक-समृद्धि की प्राप्ति के लिये तो अधिक उद्यम नहीं करता था—यद्यपि वह जीवन्-मर ताना-बाना बुनता रहा, लेकिन अधिक सम्भावना यही है कि वह मुजारे भर के लिये कमाठा होगा और संग्रह की उसे कोई चिन्ता न होगी, इसी से उसकी माँ को बख़तर यह चिन्ता बनी रही, कि इस ‘ताना बाना कपू न सून्क’ और यह ‘हरि हरि एस सपटिषो। माँ ने उस बड़े बर समझया भी ‘हमारे कुम कडन रामु कहिषा’, लेकिन वह कहीं मानने वाला था तब उसने शीघ्र कर कहा—

‘जबकि मासा सई निपूते तब ते सुगु न भइषो।’

भक्त का मौकिक परिवार मुन्नी रह भी कैसे सकता था। एक दो स्थानों पर उसने अपने पिता का उल्लेख भी किया है, पर उससे उनके किसी विनाय ब्यबहार और गुणों पर

प्रकाश नहीं पड़ता । एक जगह उसने लिखा है—‘वापि दिशासा मेरो कीम्हा ।’ सम्भवतः यह तमी का उल्लेख हो, जब माँ के कोभित होने पर कवीर हठ गया था । संक्षेपतः कहा जा सकता है, कि कवीर भी सामान्य लौकिक गृहस्थ था । माँ की झिड़कियाँ, वाप का विश्वास पत्नी के उमाहने, और कुपूठ कमास तमी उनके जीवन के वरदान थे । इस सामान्य गृहस्थ की महिमा इसी में है, कि इसमें इस बन्धन में बंध कर भी निर्निष्ठ दृष्टि से अपना मार्ग बनाए रखा—और निवृत्ति-परक प्रकृति का मध्य-मार्ग चुनकर जन-जीवन को उन्नत पारिवारिक जीवन का क्रियात्मक संदेश दिया ।

‘हम घर सूठ तमहि नित ताना ।’

सूठ के ताने-बाने में ही वे जीवन के ताने-बान का सत्य छू डते रहे । प्राचीनिका प्रतिष्ठ करने के लिये उन्होंने बयन-जीवी बने रहना ही उपयुक्त समझा । उनकी वाणियों में प्रयुक्त ताने-बाने के रूपकों को ध्यान से देखने से पता चलता है, कि उन्हें अपने व्यवसाय का बड़ा सूक्ष्म ज्ञान था । विश्व-स्रष्टा को कोरी क्यू कर उसने उससे अदभुत तादात्म्य स्थापित किया है । इसी में उनके लौकिक और पारलौकिक जीवन का अद्वितीय समन्वय और संतुलन देखने को मिलता है ।

संसार को ही वे सर्वोत्तम तोष-यात्रा समझते थे । इसीलिये उस युग के घुमक्कड़ संतों की तरह उपदेश देने या अपने विचारों का प्रचार करने बहुत इधर-उधर नहीं भ्रूमे, क्योंकि ऐसा करने में उन्हें अपने व्यवसाय से हाथ धोना पड़ता, जो उन्हें उपयुक्त न प्रतीत हुआ । इसीलिये उन्होंने बहुत

कम यात्राएँ कीं। उनको समाधियों तथा अन्य अनुमानों के आधार पर कुछ विद्वानों का मत है, कि वे रतनपुर अगम्याप पुरी तथा गुजरात भी गये थे। पर यह बहुत सम्भव नहीं प्रतीत होता है। मगहर वे अवश्य गये थे और 'गोमती-तीर' आदि कुछ भाग-भाग के स्थानों पर भी कभी गये होंगे इसमें सन्देह नहीं।

उनका जीवन बड़े संपत्तियों में व्यतीत हुआ था। बालपन से ही द्विविधार्थों ने उनका साथ दिया था। जैसा कि किवदन्ती के आधार पर प्रचलित है कि विषवा के घर जन्म और जन्मते ही फेंक जाना, पुन मौर जुमाहे के पास पासन-पोपण-यह सब सामान्य जीवन का प्रवाह नहीं है। इसी प्रकार बड़े होकर माँ की झिड़कियाँ तथा और बड़ होकर पत्नी के उसाहने यह सब भी उनक लिये सरस-जीवन का गौरव नहीं बन सका। न केवल घर में ही यह हालत थी, बाहर तो और भी बुरी दशा थी। पाँच और पड़ित स तो उलझते ही रहते थे, काजी और मुस्ना स भी बँर सेन में उन्होंने कभी बँर नहीं लगाई। वस एक धपनी ही घुन के पक्के थे। उन्हें जो गसत लगता था उसे लुसे मैदान में भी कहने में कभी न पूरे थे, चाहे फिर भी दुरमन क्यों न हो जावे और उसका कुछ भी बुप्परिणाम उन्हें क्यों न भुगतना पड़े। इस सौदे में वे शानी-प्रशानी, छोट बड़ राजा रक किसी से भी न डरे थे—इसीलिये उन्हें राजा ने त्रोपित हाथी के सामन 'भुजा वाप मिसाकरि डारियो लेकिन उस भगवत्-विदवासी भक्त को न जाने भगवान् ने कैसे बधा दिया। पुन गंगा में डुबाने के लिये जिस जजीर से बांध कर फटा गया था, गंगा ने भी कवीर को डुबाने क स्थान पर



उस जंजीर को ही तोड़ कर हुआ और उसे तो उबार दिया—अद्भुत है बिधि का बिधान और भक्त का विश्वास। इस अद्भुत विश्वास के सहारे ही युग २ से मगध-शूक्त जीवन बनिवान भी करते पाये हैं। सम्भवतः इन विरोधों, पीड़ाओं और यातनाओं के कारण ही वे अधिक उष्ट और प्रवण्ड हुए गये थे। जहाँ मगवान् और उनके सच्चे भक्तों के प्रति उनमें भया और नम्रता थी वहाँ शास्त्रवाधियों के प्रति उनमें आक्रोश था। अद्भुत था उनका जीवन और व्यक्तित्व, जिसमें विरोधी कार्यों और गुणों का विशिष्ट समाहार उपलब्ध है।

सेन, पीपा, रैदास और घन्ना इनके गुरु-माई प्रसिद्ध हैं। विद्वानों ने इस दृष्टि से इन सब का समय निर्धारण तथा परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। और जो हा या न केवल इनकी बातियों का अध्ययन करने से इनकी विचार-धारा में अद्भुत साम्य अनुभव मिलता है। ये सब समकालीन रहे हों या न, हाँ ये एक परम्परा में अग्रसर थे और विचारधारा की दृष्टि से यह परम्परा रामानन्द की परम्परा ही कहना सकती है। कबीर का व्यक्तित्व इन सब से प्रखर था अतः रामानन्द के बाद वे युग-अवर्तक बन बैठे।

कबीर ने बड़े व्यापक जन-समुदाय को प्रभावित किया था। उसमें बग, व्यवसाय जाति, धर्मस्था आदि का विचार त्याग कर सभी काटि के व्यक्ति थे। इतना होने पर भी नियमित शिष्य-परम्परा चलाने की दृष्टि से उन्होंने किसी विशेष शिष्य को ऐसे अधिकार न दिये थे। उन्होंने अपनी कृतियों में किसी शिष्य का उल्लेख भी नहीं किया। परन्तु

भक्त-परम्परा के धाधार पर उनका गेजा वमभाने वाले विजयी  
 ना कबीर-पंथ की छतीसमढ़ की छात्रा क प्रवस क धमदास  
 तथा उनकी पंथ-परम्परा को काणी में बनाने वाले सुरतगापाल  
 का नाम उनकी शिष्य-परम्परा में सावर मिया जाता है । यह  
 घोर बात है कि जिस मूर्ति-पूजा घोर बाध्याहमरा का बिराध  
 करत २ उन्हीं जीवन बिता दिया, उनक शिष्या द्वारा प्रचलित  
 पर्वों की छासाधों में उन्हीं की मूर्ति की पूजा होन लगा घोर  
 सब धाधारों का रूप भी निर्धारित कर दिया । बिद्व क सभी  
 पमों क उन्नायकों क बिषय में यह सत्य प्रतीत हाता है कि  
 प्यों २ किसी धम की जीवत उक्ति छाष होनी जाती है  
 त्या २ वह भी धाधार प्रमान हा कर समुदाय क रूप में  
 ब्यापक ता हो जाता है, परन्तु धान्तरिक दृष्टि स प्रभाव घोर  
 महत्व हीन भी होता जाता है । कबीर नहीं, उसक धमुपायियों  
 द्वारा प्रचलित कबीर-पंथ भी इसका धपबाद नहीं ।

सत्य के प्रति आग्रह घोर असत्य पर धाधात भक्त से  
 धास्मीयता घोर मायावी से धनगाव, कयनी में शक्ति घोर  
 करमा में बिदवास, निबृत्ति-परक होते हुए भी प्रवति-परक  
 जीवन, सत होते हुए भी पुन गृहस्था सधयमय जावन बिताते  
 हुये भी, स्वत सरस उपदण देने वाले हाकर भा स्वत  
 धाधरणसीम सामान्य होकर भी धसामान्य एव धद्वितीय  
 स्वभाव, कृतित्व एव ब्यक्तित्व रमने वाले युग-दृष्टा कबीर  
 धुन-नायक भी थ । उनक इस ब्यक्तित्व का महान् बतान वाले  
 धार्मिक बिस्वासों का ही धध्यमन धयले पृष्ठों में किया  
 गया है ।

## यतोभ्युदयनि, श्रेयससिद्धि, स धर्म<sup>१</sup>

एहिक एव पारसीकिक सुख शान्ति एव समृद्धि की ओर ल जाने वाला साधन धर्म है। सृष्टि के विकास क्रम के साथ साथ बौद्धिक मानव मृत्यु के माध्यम से धर्म के संहारक प्रहार को न सह सका। सदा बने रहने की बलवती इच्छा न उसमें एक अज्ञात शक्ति के प्रति भय उत्पन्न कर दिया। उस भय से ही मानव में उस शक्ति के प्रति विश्वास थड़ा और प्रेम उत्पन्न हुआ। यह भगवत्प्रेम ही धीरे धीरे बृद्ध वर्धनों के साथ मानव धर्म में परिणत हुआ।

यो ता 'धारणाधर्मश्चाहु'<sup>२</sup> धारण करने से हो धर्म धर्म जाता है। इसीलिए धर्म का धर्म दाहकता है। जो हो धर्म के इन मूल तत्त्वों से जब मानव सम्बद्ध होता है, तब वे ही मानव-धर्म का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार मानव-धर्म के जो दो उद्देश्य हैं। जसा कि ऊपर बताया जा चुका है— एहिक एव पारसीकिक सुख, शान्ति व समृद्धि पाना। मूलत एहिक समृद्धि धर्म धर्म में साध्य नहीं, वह ता केवल साधन रूप में स्वीकार्य हो सकती है। धर्म से एहिक सुखों को ही मानव साध्य समझ बैठता है, वस्तुतः पारसीकिक उन्नति एव अद्वितीय ध्यान में तस्मीनता ही मानव-जीवन का साध्य है। और जो मानव जीवन का साध्य है वही मानव-धर्म का

१ बेरोपिक दर्शन १ १।

२ महाभारत पर्व १६ २४।

उद्देश्य हो सकता है। सम्भवतः इसी कारण धर्म के दो पक्ष हैं, सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार (प्राचार) पक्ष। स्मृति कारक न प्राचारप्रभवो धर्म<sup>3</sup> कह कर प्राचार का महत्त्व स्थापित किया था। क्योंकि उन सब सिद्धान्तों का ज्ञान व्यर्थ है जिन्हें जीवन में निम्नारम्भ रूप नहीं दिया जा सकता। यद्यपि जोषिठिर को 'सत्यवद' का पाठ एक मास भर न पाव हो सका था तथापि धर्मराज की उपाधि ने उन्हें को विमूर्षित किया था। इयत्ता क्षीत हुए भी सत्य के ज्ञान के बिना उस प्राचरण में उठारना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पत सिद्धान्त पक्ष का ज्ञान होना भी उठना ही आवश्यक है, जितना कि उसके व्यवहार (प्राचार) पक्ष का। दिव्य धारमाओं की अनुमृति पर प्रधारित सिद्धान्तों को आधार बना कर सम्यक् व्यवहार (प्राचार) से जीवन व्यतीत करना ही वह पार्थिव जीवन है, जो निमित्त मानव को ऐहिक सुखों के माध्यम से पारसौकि सुख और दाति की ओर ल जाता है। मानव-धर्म महान् है। उसे किसी तक की नहीं, अनुमृति की आवश्यकता होती है। उसके प्राचार में किसी बाह्य बंधन का नहीं, एतन्मात्र सद्भाव और नित्यता का ही राज्य होता है। लेकिन मानव पारिवारिक एवं सामूहिक प्राणी है, अतः उसमें मानव-धर्म को भी सामाजिकता के कटपरे में बन्द करना प्रारम्भ कर दिया। सामाजिकता के संकीर्ण घरे में मानव-धर्म पनप नहीं सकता, अतः उपयुक्त क्षण के प्रभाव में उसमें भी विचार धान अवश्यम्भावी है। इन विचारों के ही परिणाम स्वरूप श्री कृष्ण को कहना पड़ा था—

3 अनुमृति, १, १२।

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

धर्म्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥”<sup>4</sup>

धर्म के नाश और अधर्म की वृद्धि होने पर ही दिव्य आत्माओं का संसार में अवतरित होना पड़ता है। ये दिव्य आत्माएँ और कुछ नहीं वे ही भौतिक महापुरुष हैं जिन्होंने अन्तःकरण में स्थित ब्रह्म को उद्भासित कर लिया है। परिस्थितियों का ऐसा करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संयोग एवं सहयोग होता है। सम्भवतः इसीलिये एकले ने तो यहाँ तक कहा है कि दिव्य की महान् विभूतियाँ काम प्रसूत होती हैं। जो बहुत सत्य है। रावण की विकृत प्रतिभा से उत्पन्न दुराचारों ने प्रबामी अक्षय-मुत्र को राम बना दिया था। काम के अत्याचारों तथा दुर्योधन के सूक्ष्म नैव दास्यामि (सुई की गोक के बराबर भी भूमि न दूंगा) वाले इठ ने अश्व की गोपियों के कर्ष्या को भगवान् श्री कृष्ण बनने पर विवश कर दिया था। ‘ज्ञानलवदुर्विबन्ध’ ब्राह्मणों के सांज्ञिक अनाचारों ने बुद्ध की प्रमुक्त सहज प्रतिभा का उदबुद्ध कर उस भगवान् बुद्ध बना दिया था। इसी परम्परा में भारतीय मनोपा के क्षितिज पर अमरतीय मानव मानव नहीं कामों की राजनैतिक एवं सामाजिक ही नहीं अपितु धार्मिक दाय की नृशंसता तथा भारतीय धर्म नहीं, उसके धाधार के प्राइम्बर न कवीर को कबीर (महान्) गगन के लिए पुकारा था। इसी लिये द्विपदी जी को निस्तमा पड़ा—‘कबीर भावि मृत हुए थे।’ वे धाविमृत हुये हों या न। लेकिन यह

4 गीता अध्याय ७, ७ ।

5 कबीरः आचार्य द्वात्रिंशत्तार हि ५ १०० ।

निर्वास सत्य है कि उन्होंने ब्रह्म को भवन्मयी ही अपने धर्म' करण में 'धाविर्मूत कर लिया था। इसी लिये सत्य का कवच पहन कर, कटु सत्यों का प्रहार करते हुए उन्होंने समाज के सब धार्मिक ठकुरारों को म्हाड़ कर, फटकार कर घोर समझाकर धर्म में सहस्राया भी, ताकि वे उचित धर्म मार्ग पर प्रसर हो सकें।

कबीर अपनी आत्मा के सच्चे पुजारी थे और वे जानते थे कि सत्य दो नहीं हो सकते। इसीलिए उन्होंने किसी सत्य का कभी विरोध नहीं किया और जो सत्य नहीं वह धर्म भी नहीं हो सकता, धर्म उन्होंने किसी धर्म का भी विरोध नहीं किया, उन्होंने तो कबल सत्य तथा धर्म के आवरण के नीचे जमी हुई मूल को बाहर निकाल फंफने का प्रयत्न किया, अठ कबीर के धर्म की सबसे पहली और सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने आज के धार्मिक पूर्व 'कबीर-पंच' का मूलन न काके सर्वजनीन भिरंठन मानव-धर्म की स्थापना की थी। धर्म का सच्चे सचक ज्ञान के कारण कबीर मन्त्रदृष्टा ऋषियों से निम्न स्तर पर न थे और विषय धारमाओं की धनुमूर्तियां प्राय एक-सी होती हैं, क्योंकि धनुमूर्ति निरद्वय और पवित्र अस्व-करण की ध्वनि होती है। कबीर का काव्य इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

कबीर का 'कबीरत्व' इसी में है, कि उसने केवल 'धर्मो साध' को ही अभिव्यक्ति दी। इसलिये उसके धर्म में सत्य का बल, वाणी का शक्ति, भाषा की सरलता और सादगी, जिन्दगी की सच्चाई, वास्तविक आचार की रूप रेखा, इत्य

का पीडन, मास का उच्छ्वसन, ज्ञान का प्रकाश, वौदिकता का विकास मानव-मन का स्वभाव समाज का कल्याण हैं और इनसे भी बढ़ कर हैं जीवन का धमर सन्देश—एकमात्र सत्य से तादात्म्य । जिसने उसे पहिचाना वह धमर हो गया जिसने उसे जाना, वह ज्ञानी हो गया जिसने उसके रहस्य को समझा वह समझदार हो गया जिसने उसे पढ़ा, वह पण्डित हो गया जिसने उसे सुना वह निर्मल हो गया, और जिसने उसे धपनाया, वह ठो स्वयं कवीर (महान्) ही हो गया ।

कवीर जन्म जाति और कर्म से सामान्य मानव थे वृत्ती लिये उनके माध्यम से मानव धम का प्रसार हुआ । वे दार्शनिक न थे, लेकिन उन्होंने सम्पूर्ण वर्णों के तत्वा के दशम कर लिये थे, वे तार्किक भी न थे परन्तु वे उनके प्रत्येक शब्द से परिचित थे वे वेद पाठी भी न थे, पर वेदों का सार संसार को पढ़ाने की क्षमता रखते थे वे पुस्तकी बिद्या के ज्ञाता न थे, पर अध्याह ज्ञान के मञ्छार थे वे सामाजिक दृष्टि से बाह्य आधारवान न थे, पर उनका व्यक्ति आधार-निष्ठ था, धत वे सामान्य हाकर भी असामान्य व और किसी के कुछ भी न होकर सभी के सब कुछ थे ।

उनके 'कर्म और धम में एकता थी कपनी और करनी में साम्य था 'कहनी और रहनी में समरूपता थी । उनका धर्म 'नकब धम' था, जिसका उचार इनको मान्य नहीं, जिसे सीमित रखना उन्हें सहा नहीं और जिसका उपदेश उन्हें प्राह्य नहीं, क्योंकि वे तो कबल सन्देश देन की साधना लेकर धाये थे—वह भी कपनी नहीं, करनी के माध्यम

से। इसीलिए कबीर का घम योग में घटका नहीं, वहाँ से सहज बन कर निकल आया, ज्ञान में उपमा नहीं, वहाँ से बिवेक बन कर बसा आया और भक्ति में रमा नहीं, वहाँ से धनुमूर्ति बन कर वह निकला। अतः वह विभिन्न पतों से विबाध करके भी स्वतः किसी 'बाध' के बककर में नहीं फँसे। अन्याय सम्प्रदायों से भगाकर भी किसी भगाड़े में नहीं उसका इसी लिए किसी विधिष्ट समुदाय के धर्म प्रणता न बन मानव घम के निर्माता बने।

कबीर दार्शनिक न थे, अतः उन्हें किसी दसन विधेय के बंधन में बाँधना उनके भाष और ध्यान भाष आयाय होगा। क्योंकि धनुमूर्ति तक की सीमाओं से परे की वस्तु है और दसन का तो आधार ही तक है। इसी कारण अद्वैतवाद की ओर रुझान रखने वाले बौद्धिकों ने उनकी धनुमूर्तियों को धरने विचारों के धनुमूल बामकर उन्हें विधिष्ट सम्प्रदाय के समर्थक बताया है। न केवल उनकी धनुमूर्ति, अपितु उन्हीं की अभिव्यक्ति को विषयानुसृत सम्बद्ध कर सरल व स्पष्ट गद्य में प्रस्तुत करने का हमारा प्रयत्न है। यहाँ उनके धार्मिक विद्वांसों का अध्ययन ग्रहण, सृष्टि जीव उनका साध्य तथा अवरोधक शक्तियों का माध्यम से हुआ है।



-३-

## ब्रह्म माहात्म्य

कबीर साठ समु'दहि मसु करत,  
 कमल करत बगराइ ।  
 बसुधा कागदु खर करत  
 हरि असु लिखतु न जाइ ।<sup>६</sup>

ब्रह्म का माहात्म्य तो इतने से ही स्पष्ट है कि उसका मुर्दाकित करने के लिए भनपड़ कबीर को भी 'बसुधा, कागदु, तथा साठ समु'दहि मसु' की सामग्री प्रत्यल्प ही प्रतीत हुई, फिर वह हरिगुण कैसे लिख सकता था। कबीर तो जीव ही था 'समक 'सनन्धन' प्रादि भी उसका गुणगान करते हैं' लेकिन वे भक्त के भक्त माहात्म्य का भक्त कर्ता। न केवल सुरपति, नरपति उसकी महिमा को कहने में प्रसमय हैं अपितु "चार वेद और विभिन्न पुराना" इसके महत्त्व का बलाग करने में प्रयत्न हैं। नारद और दारवा उसकी सेवा में उपस्थित हैं और ब्रह्मपत्नी कमला तो दासो ही बनी बैठी है। लेकिन उसका गीरव भारो को सोनापों से भी परे है।<sup>७</sup> "ठाठा ब्रह्मा निगम बीभारै" लेकिन "प्रलखु न लखिप्रा

6 'स्य' श्लोक ८१

7 पृष्ठ ३३६ पर ७४

8 पृ० ४०८ १३

आइ।" धीरों की तो बात ही दूर रही लेकिन स्वयं ब्रह्मा भी ब्रह्म का न जान सका।<sup>9</sup> अगणित चन्द्र तथा सूर्य जहाँ दीपक का काय करते हुए प्रकाश करते हैं, अतएव भर्मराज जिसके प्रहरी हैं धीर देवताओं की तो बात ही क्या—उनके भी राजा इन्द्रकोटि जाके सेवा करहि<sup>10</sup> ऐसे ब्रह्म के माहात्म्य का क्या क्रमो वखाम हो सकता है—मानव कल्पना से भी दूर का बात है।

न केवल अल्प्य उसके रूप की कल्पना ही महान है अपितु उसकी कष्टु त्व-शक्ति का ज्ञान भी मानव-मन की सीमाधा में धाबदा नहीं हो सकता। वह जब चाहे हँसते को रना देता है और रोते को हँसा देता है। 'अस ते पस करि धीर पस से रूप तथा पुन' भठ पवठ तक बना डामता है। क्षण भर में मिखारी को राजा और राजा से मिखारी बना देता है। सक्षेप में मानव मन की सभी अकल्प्य कल्प नाधों को भी वह क्षण भर में साकार व सायक कर देता है। वाणी को अदम्य धमिम्यक्ति से भी जब वे सन्तुष्ट न हो सके, तब उसे 'युगे का गुण' कह कर उन्हीं सन्तोष किया। गुरु नामक ने "मै मूरक कहणु न जाई" कह कर अपनी विनम्रता का परिचय दिया है। भक्त धिरोमणि तुमसी दास न गुण पान करते हुए एक कर कहा—'घनत हरि की कथाएं भी घनत हैं।' धीर यह कहकर वे स्वाठ सुत में सीन हा

9 इ ११२०, ५

10 इ० १२५२, २

11 इ० ७२२, १, १

गये। इतना होते हुए भी लेखक का यह मधु प्रयत्न 'तिसीपु दुस्तर माहादुहुपनाम्भि सागरम्' (पोत से भी दुस्तर महान सागर को तैरने का) दुस्साहसमान सम्झा जा सकता है जिसका दाप लेखक को नहीं महान् अनुभूतियों की अभि व्यक्ति के अध्ययन और उससे प्राप्त अदम्य प्रेरणा तथा अनवरत प्रसाह को ही दिया जा सकता है।

### आविर्भाव

कबीर का ब्रह्म निर्विवाद रूप से अजन्मा, अनादि तथा अमोनि है लेकिन मनु की मक्ति में इनमी पकित है कि अपनी अनुभूति से वह उसे अन्तर में उद्गमित कर लेता है। इसी सिय कहा है, 'पूठि पिता इक् आइया'<sup>12</sup> पुत्र (आत्मा) पिता (परमात्मा) को आविर्भूत कर लेनी है और विल महि साई परगटे'<sup>13</sup>।

### ब्रह्म के गुण

वास्तविक के आत्मा क्या है? यह पूछने पर भाब को आत्मा ने दो बार मूक रह कर उसे अपना मन्देय दे दिया था—लेकिन उसने न समझने पर तीसरी बार भाब को कहना ही पड़ा था कि 'आत्मा मौम है'<sup>14</sup>। सम्भवत इसी लिए 'आत्मान विद्धि' (अपने आप को जानो) का भारतीय दक्षम में मानव जीवन के साध्य के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान अना हुआ है। आत्मा तो शाश्वत है लेकिन परमात्मा क्या है?

12 पृ० १२५, १

13 श्लोक १८६

14 वासु गुप्त—हिन्दी भाषा हरिद्वयन किछासष्टी, भाग २ पृ ३२।

'स एष नेति' 15 'वह यह भी नहीं' 'वह भी नहीं' इत्यादि। 'मन्त्र द्रष्टार ऋषियों ने इस नेति पद्धति से ही उसके स्वल्प को समझने का प्रयत्न किया है। कवीर को अनुभूति में उनसे बहुत भिन्न नहीं है। पर उसी पद्धति का आश्रय लेकर हम कवीर के ब्रह्म को समझने का प्रयत्न करेंगे। कवीर का ब्रह्म अनादि है और अनादि होने के साथ साथ वह अज्ञाना भी है क्योंकि भाव न आई मरं न जीव' 16। और जो विश्व में नहीं जाता वह अयोनि भी है, इसीमिय वह जो विश्व में नहीं जाता वह अयोनि भी है, इसीमिय वह अनायास ही अमर भी है। 'अगम अगोचर रहे निरन्तरि' 17 वह न केवल अगम और अगोचर है अपितु अनन्त्य व अठर भी है, उस सांव कर आगे बढ़ने की बात तो दूर रही उस तक पहुँचना भी असम्भव नहीं, तो अति कठिन अवश्य है। अन्तर्हित होने के कारण उसका पार भी नहीं पाया जा सकता, 'ना अन्तु न पार' 18 और जिसका अन्त नहीं उसकी सखता, 'ना अन्तु न पार' 'मया अयाह पार नहीं पाया जा गहराई का भी क्या ज्ञान 'मया अयाह पार नहीं पाया' 19 जोव तो क्या शिव मुकुंददेव भी उस ब्रह्म की चाह न पा सके। उसके गुणों की चाह पाने में प्रयत्नशील कवीर उसे अन्त कह कर सन्तोष करते हैं। क्योंकि 'बेद पडि पडि ब्रह्म जनमु गवाइया' 20 लेकिन अन्त का अन्त कहाँ? अन्त ही जा ठहरा।

अन्त जाने के कारण ही वह अन्तस्वर, अविनाशी, अक्षर

15 बृहदारण्यक उपनिषद्—४, ४, १२।

16 पृ० २२३, ४०

17 पृ० २२२, ३०

20 पृ० ४०८, ३०

17 पृ० २२३, ४८

19 पृ० २०१, २३

गये। इतना होते हुए भी लेखक का यह मधु प्रयत्न तिसीपु  
दुस्तर मोहादुबुपेनास्मि सारम्' (पोथ से भी दुस्तर महान्  
सागर को तैरने का) दुस्साहसमात्र समझा जा सकता है  
जिसका दोष लेखक को नहीं महान् धनुभूतिया की अमि  
व्यक्ति के अध्ययन और उससे प्राप्त अवश्य प्रेरणा तथा अन  
वरत उसाह को ही दिया जा सकता है।

### प्राविर्भाव

कबीर का ब्रह्म निर्विबाध रूप से अज्ञ-मा, अनादि तथा  
अयोगि है लेकिन मनु की भक्ति में इतनी शक्ति है कि  
अपनी धनुभूति से वह उसे अन्तर में उद्दामित कर देता है।  
इसी लिये कहा है, 'भूति पिता इकु धादमा'<sup>12</sup> पुत्र (आत्मा)  
पिता (परमात्मा) को प्राविभूत कर लेनी है और विभ महि  
साई परगटे'<sup>13</sup>।

### ब्रह्म के गुण

वास्तविक आत्मा क्या है? यह पूछने पर भाव की  
आत्मा ने दो बार मुक रह कर उसे अपना सन्देश दे  
दिया था—लेकिन उसका न समझने पर तीसरी बार भाव को  
कहना ही पड़ा था कि 'आत्मा मौन है'<sup>14</sup>। सम्भवत इसी  
लिए 'आत्मान विधि' (अपने आप को जानो) का भारतीय  
दक्षन में मानव जीवन के साध्य के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान  
बना हुआ है। आत्मा तो शान्त है लेकिन परमात्मा क्या है?

12 पृ० १२५, १

13 रत्नाक १८९

14 राम गुप्त—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफ़ी, भाग ५० ४८।

‘स एष नेति’<sup>15</sup> ‘वह यह भी नहीं’ इत्यादि।  
 ‘मन्त्र द्रष्टार ऋषियों ने हम नेति पद्धति से ही उसके स्व  
 रूप को समझन का प्रयत्न किया है। कवार को अनुभूति में  
 उनसे बहुत भिन्न नहीं है। भव उसी पद्धति का भाष्य  
 लेकर हम कयोग के ग्रह का समझन का प्रयत्न करेंगे। कवीर  
 का ग्रह घनादि है और घनादि होने के साथ साथ वह  
 प्रकृता भी है क्योंकि प्रायः न जाई मरं न जीव’<sup>16</sup>। और  
 जो बिस्व में नहीं घना वह घयोनि भी है, इसीमिये वह  
 घनायास ही घमर भी है। ‘भगम भगोवर रहै निरन्तरि’<sup>17</sup>  
 वह न केवल भगम और भगोवर है अपितु अप्रम्य व भव  
 नो है, उस साथ कर प्राग बड़ने की बात तो दूर रही उस  
 तक पहुँचना भी घमन्मन नहीं तो प्रति कटिन प्रम्य  
 है। घन्तहित होने के कारण उसका पार भी नहीं पाया जा  
 सकता, ‘ना घन्तु न पार’<sup>18</sup> और जिसका घन्त नहीं ज्यकी  
 पहराई का भी क्या ज्ञान ‘यथा मयाह याह नहीं पावा’<sup>19</sup>  
 जीव तो क्या गिव मुक्य भी उस ज्ञान की याह न पा सक।  
 उसके गुणों की बाह पान में प्रयत्नगीम कवार उस घन्तु कर  
 कर मन्तोप करत है। क्योंकि ‘बद पदि पदि इत्य ज्य  
 गवाइया’<sup>20</sup> सकिन घमन्त का घन्त क्या? घन्तु हो न  
 टहरा।

घमन्त हान के कारण ही वह घन-बद, कटिन-उ-उ-उ

15 इतिहासकोशनिबन्ध—४ ४ २२।  
 16 ४ २२२, २०  
 17 ४ २२२, २०  
 18 ४ २०८, २०

17 ४ २२२, २०  
 19 ४ २२२, २०

एवं 'धर्म' है। काम को प्रभाव गति से कोई नहीं बच सका लेकिन एक मात्र ब्रह्म 'सदा धर्म' है। 'बुद्धि प्रसर न सिद्धि' <sup>२१</sup>, सम्पूर्ण ब्रह्ममात्रा का विलेपण कर कबीर न अनुभव किया कि 'रा और 'म' दो ही प्रकार ऐसे हैं जो वस्तुतः 'प्रकार है परत भक्त जीवन की साधकता उन्हीं में तत्सम होन में है। धर्मस कह कर भी कबीर ६ धर्म में ही उसकी धर्मनी महत्ता छिपी है। उसकी प्रतुष्टि एक धर्मस्तोत्र में ही उसकी धर्मस्य भक्ति क द्युत होते हैं। ब्रह्म को धर्मस्य कहने के परभाव वह और कुछ न उन्हें एसी बात नहीं धर्मनी सामर्थ्य को सीमित जान कर वह प्रयत्नशाल न रहें एसी बात भी नहीं उसे स्वगत है धर्मवस्त एक धर्मस्य, ब्रह्म नी धर्मस्य की। 'धर्म और धर्मस्य धर्मस्य तथा धर्मस्य कह कर भी वह उस छोड़ने को तैयार नहीं उसके धर्मस्य रूप और गुणों को छोड़ कर धर्मस्यता के माध्यम से वह हमें धर्मस्य का धर्म मान कराना चाहता है धर्मस्य का ज्ञान कराना चाहता है और चाहता है धर्मस्य का मुख्य अतस्ताना। कोरु हरि समाधि नहीं राजा <sup>२२</sup>। ससार क राजाधो मे तो ब्रह्म का मेवक ही धर्मस्य है। धर्मस्य वह तो 'धर्मस्य' और धर्मस्य है। धर्मस्य धर्मस्य की तरह से धर्मस्य न आई <sup>२३</sup> और एक धर्म प्राप्त करने उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता। इस प्रकार धर्मस्य और धर्मस्य ब्रह्म धर्मस्य न धर्मस्य भी है। उसकी तो बात ही दूर की है। उसके नाम-मात्र का भी 'धर्मस्य न दहै' <sup>२४</sup> और न ही सम्पूर्ण धर्मस्य धर्मस्य देकर उसे लरीदा ही जा सकता

है इसलिये वह 'प्रकृत्य भी है। लेकिन सन्तों ने धर्मूल्य ब्रह्म को मनु दे राम सीया है मोक्षि<sup>२६</sup>। इस प्रकार मौक्तिक स्थूल गुणों से परे के ब्रह्म को भावात्मक सूक्ष्म गुणों से भी दूर बताया है। कबीर का ब्रह्म घट घट निवासी होकर भी स्वयं प्रकट प्रशरीरो। ही है घोर प्रकट होने के कारण ही एकमात्र वह प्रमन है। क्योंकि मया ब्रह्मा, मैसा इन्दु<sup>२७</sup> विश्व में सभी कुछ तो मैसा है। 'घाघत दोरं जात न जानी<sup>२८</sup> प्रदुस्य वह इन्द्रियातीत भी है, उसे तो केवल कम घटुषों के स्थान पर अन्त घटुषों का ही विषय बनाया जा सकता है। विश्व क सम्पूर्ण वाङ्मय का उपयोग करने पर भी वह प्रवण नीय ही बना रहता है। 'पढ़े सुन किया होई<sup>२९</sup> वेदों के पढ़ने व ध्वनन से भी वह गम नहीं, जो वाणी उसका कथन नहीं कर कबीर उसे 'गूगे का गुड़<sup>३०</sup> कह कर ही सन्तोष कर पाता है। रूप रहित प्रसूदय ब्रह्म इन्द्रियातीत होकर केवल अनुभूति-गम्य है, क्योंकि अंभलमान की उच्चतम कल्पनायें भी उस तक नहीं पहुँच पाती।<sup>३०</sup> ज्ञान की साधिका बुद्धि भी इसे प्रपनी सीमा में नहीं बांध पाती।

कबीर कबि नहीं जो मन से ब्रह्म की कल्पना कर पाता, वह ज्ञानी भी नहीं, जो बुद्धि से उसका चिंतन कर पाता, वह योगी तो या ही नहीं, जो योग व सिद्धि द्वारा उस प्राप्त कर पाता। वह तो अनय भक्त है, जिसने अनवरत लगन के कारण उसकी अनुभूति की है।

26 ३०० ११

27 ३ ३३० ६०

29 " ३२०, १८।

26. ३०४, ११

28 ३५२ १२।

30 श्लोक ८६।



कबीर का ब्रह्म निर्गुण है अर्थात् सभी गुणों से रहित क्योंकि गुणों का आरोप करते ही वह सगुण हो जाता है। जब गुणों के आरोप-रूप को वह धारण करता है तो साकार बन जाता है। कबीर को ब्रह्म का यह रूप मान्य नहीं, इसीलिये उसने स्पष्ट ही कहा है कि अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुक्ती कर के कोई बिरसा ही उसके निर्गुण स्वरूप को जान पाता है। जिसे अभिव्यक्ति देने में वह प्रसन्न है।<sup>३१</sup> न केवल ब्रह्म को सर्व-व्यापक कहा है अपितु उसके अवतार रूप का सञ्चन करते हुए कहा है कि यदि भक्त-उदारक भी कृष्णानन्द का पुत्र या तो नन्द किसका पुत्र या ?<sup>३२</sup> कितना सरस और मधुर होते हुए भी उसका तर्क है। निरंजन व्यावहृत्<sup>३३</sup> वह कर उसने निर्गुण के ही निरंजन रूप का भी महत्त्व स्थापित किया है तथा अन्त में उसी को निरंकार और निरबानी कह कर उसकी धारणी उतारी है।<sup>३४</sup> एक मात्र वह निमग्न होने के साथ साथ विकार-रहित होने के कारण निर्विकार भी है, और जिसमें कोई विकार ही नहीं, उसमें दोष की सम्भावना कैसी ? अतः वह निर्रोप भी है।<sup>३५</sup> 'तहें उतपति परसठ भाही'<sup>३६</sup> जहाँ उत्पत्ति और प्रसव ही नहीं, वहाँ उसका नित्य स्थाई रूप स्पष्ट हो जाता है। वह न केवल अग्नि और मरण से परे है अपितु सभी मौक्तिक गुणों से भी अतीत है।

'सम बट देखत पीठ'<sup>३७</sup> प्रत्येक प्राणी में उसके दर्शन होते हैं, अतः वह सर्वान्तर्यामी है। और 'धीठ एक घर

31 पृ ३३३, १०।

32 पृ ३३५, १०।

33 पृ ३३७, १८।

34 पृ ३३०, ५।

25 पृ ३३४ ८। 36 पृ ३३३, ४८। 37 श्लोक २३५।

सकन सरोरा<sup>38</sup> अथ वह सब-व्यापक भी है। सब व्यापक वह एक रूप या सम रूप है, क्योंकि घट फूटने पर भी उसकी स्थिति में कोई अंतर नहीं आता। और वह तो 'त्रिभुवन महि रहियो समाई'<sup>39</sup> विश्व के धनु-परमाणु में व्याप्त होने के कारण वह सबत्र विद्यमान है। बांग देते हुए मुल्ना को धिक्कारते हुए उसने कहा है कि सबव्यापक वह सबत्र भी है।<sup>40</sup> अतः दुराचार करने से पूर्व मानव को उसके इस गुण का ध्यान रखना चाहिए तब वह घनायास ही पापकर्मों से बच सकेगा।

यह सर्व-व्यापक, सर्वत्र ब्रह्म ही सृष्टि कर्ता एव सब स्रष्टा है। सृष्टि रचना क्रम पर प्रकाश डालते हुए उसने बताया है कि सब प्रथम प्रकाश पुनः प्रकृति एव तत्पश्चात् प्राणी व मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। 'माटी एक धनक मालि करि साबी साजन हार।'<sup>41</sup> कुम्हार-ब्रह्म ने जिस माटी से अन्याय घटों का निर्माण किया है—उनमें परिवर्तन या सकला है, लेकिन उपादान माटी तो वहीं रहेगी। 'समुजमु घानि तनाइमा तांभा'<sup>42</sup> जुमाहा कबीर ब्रह्म को जुमाहा बनाकर उससे विश्व का ताना-बाना न बुनवाया तो उसकी आत्मीयता का परिचय कहां से मिलता। लेकिन इस रहस्य को उसके सिवाय और कोई नहीं जानता। इस आत्मा का विकास भी उस ब्रह्म से ही हुआ है और इसे आधार प्रदान करने के लिए उसने ही तो 'घुरि सकेसिक पुरीमा बाधि देह'<sup>43</sup> मोड़ी मी धूल की पुटिया बाधि कर देह

38 पृ. ३३०, ३४।

40 श्लोक १८४।

42 पृ. ४८४, ३९।

39 पृ. ३४९, २०।

41 पृ. ३३२०, ३।

43 श्लोक १०८।

कबीर का ब्रह्म निर्गुण है अर्थात् सभी गुणों से रहित क्योंकि गुणों का आरोप करते ही वह सगुण हो जाता है। जब गुणों के आरोप-रूप को वह धारण करता है तो साकार बन जाता है। कबीर को ब्रह्म का यह रूप मान्य नहीं, इसीलिये उसने स्पष्ट ही कहा है कि अपनी इन्द्रियों को धस्तमूली कर के कोई बिरला ही उसके निर्गुण स्वरूप को जान पाता है। जिसे अभिष्यक्ति वेद में वह ध्यमय है।<sup>31</sup> न केवल ब्रह्म को सर्व-व्यापक कहा है अपितु उसके अवतार रूप का उल्लेख करते हुए कहा है, कि यदि भक्त-उद्धारक श्री कृष्ण नन्द का पुत्र या तो मन्द किसका पुत्र या ?<sup>32</sup> कितना सरस और मधुर होते हुए भी सबावत तर्क है। गिरजन ध्यावह<sup>33</sup> कह कर उसमें निर्गुण के ही निरवयव रूप का भी महत्त्व स्थापित किया है तथा अन्त में उसी को निरंकार और निरवामी कह कर उसकी भारती उतारी है।<sup>34</sup> एक मास वह निर्मल होने के साथ साथ विकार-रहित होने के कारण निर्विकार भी है, और जिसमें कोई विकार ही नहीं उसमें दोष की सम्भावना कसी ? अतः वह निर्दोष भी है।<sup>35</sup> वह उतपति परमेश नाही<sup>36</sup> जहाँ उत्पत्ति और प्रलय ही नहीं, वहाँ उसका नित्य स्थाई रूप स्पष्ट हो जाता है। वह न केवल जन्म और मरण से परे है अपितु सभी लौकिक गुणों से भी अतीत है।

‘सम घट वेत्तत पीत’<sup>37</sup> प्रत्येक प्राणी में उसके वर्णन होते हैं, अतः वह सर्वान्तर्यामी है। और ‘श्रीत एक धर

31 पृ ३३३, ३०।

32 पृ० ३३८, ०।

33 पृ० ३३७, १८।

34 पृ ३३२०, ५।

25. पृ ३३४, ८।

36 पृ ३३३, ४८।

37 श्लोक २३२।

सक्य सरारा<sup>38</sup> धतु बहु सब-व्यापक भी है। सब व्यापक वह एक रूप या सम रूप है, क्योंकि बट फूटने पर भी उसकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। और बहु तो 'त्रिभुवन महि रहिमा समाई',<sup>39</sup> विद्व क धनु-परमाणु में व्याप्त होने क कारण बहु सबत्र विद्यमान है। बांग देते हुए मुल्ता को पिक्कारते हुए उसने कहा है कि सब-व्यापक वह सबस भी है।<sup>40</sup> धतः दुराचार करने स पूब मानव को उसक इस गुण का ध्यान रखना चाहिए, तब बहु धनायास हो पापकर्मों से बच सकगा।

यह सब-व्यापक सबत्र ब्रह्म ही सृष्टि कर्ता एव सब स्रष्टा है। सृष्टि रचना-क्रम पर प्रकाश डालते हुए उसने बताया है कि सर्व प्रथम प्रकाश पुन प्रकृति एवं तत्पश्चात् प्राणी व मनूष्य की उत्पत्ति हुई है। 'माटी एक धनक भांति करि साजी साजन हारै।'<sup>41</sup> कुम्हार-ब्रह्म ने जिस माटी से अन्यान्य घटों का निर्माण किया है—उनमें परिवर्तन का मकता है, लेकिन उपादान माटी तो बही रहेगी। 'समु जयु धानि तमाइया तांथा'<sup>42</sup> जुसाहा कबीर ब्रह्म को जुसाहा बनाकर उससे विद्व का ताना-बाना न बुनवाता, तो उसकी आत्मीयता का परिचय कहां स मिसता। लेकिन इस रहस्य को उसक सिषाय धीर कोई नहीं जानता। इस आत्मा का बिकाम भी उस ब्रह्म स हो हुपा है धीर इमे धापार प्रदान करन के लिए उसने ही ता 'धूरि सकेसि के पुरीया बाधि देह'<sup>43</sup> बोड़ी मी धून को पुड़िया बाधि कर देह

38 पृ. ३३० ३१।

40 राजक १८०।

42 पृ. ४८४, ३१।

39 पृ. ३३१, ३२।

41 पृ. ३३० ३१।

43 राजक १४८।

सहा कर दिया—प्राण का बौद्धिक-मानव अपने वास्तविक अस्तित्व को समझे तो अनायास ही उसके 'अह' का विघटन हो जावे और भावनाओं का उदात्तीकरण हो वह सच्चे अर्थों में मानव-सत्त्व के निकट आ सकेगा। काश ! सृष्टिकर्ता के इस खेल को कोई नहीं जानता।<sup>44</sup> यह सब झपटा ही सबकर्ता एवं सर्व-नियन्ता भी है, क्योंकि यही तो सहारक महेश सायन यम का भी झपटा है। इसलिए जीव से कहताहूँ कि के 'सुमरो कहियो न होइ' क्योंकि बिघाता ने तुम्हारे कर्मों के अणु रूप जो बिघान कर दिया है, उसे भेटि न सके कोइ<sup>45</sup> और 'करम बध तुम जीअ'<sup>46</sup> फिर जीव की स्वतन्त्र सत्ता ही क्या ? इस प्रकार कवीर पूण बिस्वास दिखवा देता है कि जो उजड़े को बसाता है, अस को बस और बस को बसमय कर देता है, एक मात्र वही सृष्टिकर्ता के सम्पूर्ण कार्यों का कर्ता है 'न हम की भान करहिये ना करि सकै सरीर'<sup>47</sup> अतः जीव को उसकी कर्तृत्व शक्ति में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए।

एकमात्र कर्ता ही सर्व-शक्तिमान् व सब-समर्थ है। धीनों सोकों को उसी ने शृङ्खला-बद्ध किया है अतः एस महान् स्वामी 'हरि तजि कत काहू के जाहीं।'<sup>48</sup> यह सर्व-समर्थ ब्रह्म ही तो सर्व-नियन्ता भी है, क्योंकि 'आपे वह बिस आप बसाबै'<sup>49</sup> और उसके नियन्त्रण के बिना कोई कार्य सम्पन्न भी नहीं हो सकता। बिबव के बड़े से बड़

44 श्लोक १०६।

46 पृ २००, ३।

48 पृ. ३००, ३८।

55 श्लोक ३२।

47 श्लोक १।

49 ११२३, २।

दाना उसका सम्पूर्ण भाषक बनकर गिड़गिड़ाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के भाग बचीर क्योंकर हाथ पसारे, वह तो स्वतः ही ऐसे दानों को शोच में है जो सब कुछ दन की समता स्वप्ना हो 'तुम समग्र दाते चारि पदारय देत म चार' <sup>50</sup> जीवन में एक मात्र प्राप्य धर्म धर्म, काम और मोक्ष मनी ब्रह्म देने में वह क्षण भर का समय भी नहीं लगाता इससे स्पष्ट है कि सर्व नियता ही एक मात्र सब-दानो है। सम्पूर्ण लौकिक और अलौकिक सम्पत्ति का एक मात्र दाता इहं गृह्णाई । <sup>51</sup> जो टहरा ।

सर्व-दानो सब-भाषक वह सदा स्थिर होने के कारण सब-समयो भी है न कोई समय और न ही कोई एसा समय जहाँ उसका अभाव हो। जीव के बिदबास और अनुभव की बात है कि उसका माहात्कार कर सके। यह सदा एकरूप या समरूप बना रहता है उसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं, क्योंकि शिव आदि देवताओं की तरह वह तो काल-कवचित होता नहीं। इसलिए एकमात्र वही सत्य-चिरतम सत्य है अत-मबभावने उची में पूज्य आत्म-समर्पण करना चाहिए, क्योंकि उम व्यभिक्त जीव का जिसने 'बहुं न पाह्या टोर' <sup>52</sup> एक मात्र सहायक व आश्रयदाता ब्रह्म ही है बचीर की अनुमति को अभिष्यक्ति मिली— तिस बिन दूसर को नहीं, <sup>53</sup> बिठना सरस भावात्मक सत्य है।

'ज्योति सरपी तथ अनूप । <sup>54</sup> अनुपम बहु ज्योति स्वरूप है जोर उसकी ज्योति को अनुभव करन के लिए

50 पृ २२१, ०

51 पृ. ७०४, २।

52 अथ ६०।

53 अथ ११३।

54 पृ. ३०४, ११।

भावश्यक है, कि जीव पहले इस बात को समझ से, कि वह 'एक घनेक होई रहिषो सगस महि ।<sup>55</sup> तब अपने घस्तर में भी उसकी सत्ता व ज्योति का प्रकाश अनुभव हो सकता है । घस्तर में उसकी ज्योति का अनुभूति होते ही 'छूटै भरमु मिसै गोबिन्दु' और 'वहविस हाइ धानदु ।<sup>56</sup> इस धानद के लिए ही तो जीव जन्म भर चक्कर काटता रहता है । यह हाता तब है, जब ब्रह्म की जीव पर कृपा हो । इस कृपा के परिणाम-स्वरूप ही माया का यमन तोड़ कर वह जीव के हृदय की कुटिल गांठि अब जोरै देव'<sup>57</sup> तब उसका उद्धार होता है । प्रथम्य विश्व के सभी मर्त्या के उद्धार के उपाहरण प्रस्तुत कर कबीर ने उसके कृपाभु और उद्धारक स्वरूप पर प्रकाश डाला है । अब तक उसके महात्म्य का रक्षण अलौकिक गुणों के माध्यम से करवाया जा, लेकिन वे गुण तो मानव बुद्धि को धारणान्वित धमिक करते हैं वैयक्तिक जीवन को प्रभावित कम । लौकिक धरातल पर उसकी सत्ता की महत्ता तो लौकिक गुणों के माध्यम से ही स्थापित का जा सकती है । इसीसिये तो बाह्य भ्रम के धारण तथा धार्तरिक ध्यान का दूर कर धर को अपनी ज्योति से ज्योतिष्ठ करने वाला उसे बताया है ।<sup>58</sup> उसका कृपा पात्र मन्त्र धनायास ही पुकार उठता है 'यम समान न देखत धान ।<sup>59</sup> इतिरि ता उसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए मन्त्र कहता है कि जीवन भर 'हरि सेवा करत तुमारी ।<sup>60</sup>

कृपाभु वह ही तो मन्त्र का एक मात्र रसाक है सत

55 पृ ११०७, २ ।

57 पृ ५२० १० ।

59 पृ ३१६, ३० ।

56 पृ ३४४ ११ ।

58 पृ ३७४, ११ ।

60 पृ ३००, २ ।

‘अहंनाद की पत्र त्रिनि राश्री घोर एसा करमे के लिए उसी ने ता ‘हरमास्रमु नस्र त्रिदरिषा ।’<sup>61</sup> भगवान् क इस भक्त-रसक व उद्धारक रूप में ही श्री कृष्ण का यह कहम पर विश्वास कर दिया था—

‘यदा २ हि पमस्य ग्वानिमकठि मारत ।  
अम्युत्थानममस्य तदात्मान सन्नाम्यहम् ॥’<sup>62</sup>

यह उद्धारक घोर रसक ही तो एकमात्र ‘तरन तारन सोई’<sup>63</sup> क्योंकि ज्ञा ग्यय ही अस्त क पार नहीं पहुँच सकता, वह घोरों को क्या पार पहुँचावेगा । एसा उद्धारक ही जीव के सब कष्टों को दूर करता है घोर उक्तक भय का नाश कर एक मात्र सुफल धारणदाता निरु होता है ।<sup>64</sup> इस प्रकार मौक्तिक विपदाओं से जीव को रखा कर—मौक्तिक सम्पदाओं के माध्यम से असौक्तिक ध्यानद तक पहुँचाने वाला कृष्ण ही भक्त का एक मात्र धामय स्वयं है अतः सब मायेन भक्त को उसी क प्रति पुन आत्म-समर्पण कर देना चाहिए ।

इन प्रकार कर्तार का अनादि एवं अनन्त ब्रह्म जो म केवल अज्ञानिय घोर अज्ञय ही है, अपितु वह तो अननुमेय भी है, किस प्रकार उसकी कोई भूमक विशय को दो जा सकती है । कबीर का दृढ़ विश्वास ब्रह्म की महत्ता में कम महान् नहीं, उसका अनुभव है, कि भक्त की अनन्य अनन्त व कर्तव्य भक्ति अनायास ही ब्रह्म का भी दर्शन करवा देती है । कबीर का साधन प्राप्त करता है ‘हरि पदु

61 श्रु. २०१, ७।

62 भोजा अष्टाव ७, ७।

63 श्रु. ७५२, २९।

64 श्रु. २६६, ३।



दृष्ट करि रहिए<sup>६५</sup>’ एसा करने से वीरे २ जीव का ‘मिटै मोह तनु ताप धीर पुन उसे हरस सोग दासके नहीं’ धीर अब जोब को मुख-बुल विपसित न कर सकेंगे, सब धनस्य ही वह महत् तत्त्व को अनुभव करना प्रारम्भ करेगा अथवा हरि आपहि आप ।<sup>६६</sup> कौम जागता है कि वह अपने ही भगवत् प्रण को उमार कर अभेद दृष्टि से उसी की महत्ता को अनुभव करने लग जावे । इस प्रकार अननुमेय केवल अनुभूति गम्य है । नाम में लम्भोत होकर जिसने उसमें चित्त भगाया है ‘कहु कबीर तो धनमठ पाइया ।<sup>६७</sup> इस अनुभव में ही उसे सच्चे धामन्द की प्राप्ति होती है, इसी लिए तो ‘अब मेरा मनु कतहुँ न जाहि ।<sup>६८</sup> क्योंकि धामन्द का बही तो एक मात्र प्रागार है । सौकिक दृष्टि से समा प्रकार से अगम्य अवश्य धमेय व अप्राप्य बह्य भी भक्त की पहुँच से दूर नहीं—इस पहुँच तक पहुँच जाने में ही तो कबीर की धीर भक्त की महिमा है, जिसका एकमात्र साधन है अनुभूति ।

ब्रह्माण्ड में ब्रह्म की स्थिति कहाँ है ? यह भी कम कौतूहलोत्पादक विषय नहीं ? यों तो सर्वव्यापक होते हुए भी वह एकदेशीय नहीं । उसके गुणों में यह विराभाभास ही जीव को आदर्याम्बित कर देता है । उसकी मिरागी ‘अब कथा’ को कबीर कहने का प्रयत्न करता है कि वह तो वहाँ ह जहाँ ‘पावस सिधु धूप नहीं इहीमा वह उतपति परसत नाही<sup>६९</sup>’ सिधु, वर्षा धूप छाह की तो बात ही अलग वहाँ

65 पृ ३३४, ५१ ।

67 पृ. ३२५, १० ।

69 पृ ३३३, ४८ ।

68 श्लोक १८३ ।

68 पृ १ १०३, २ ।

तो उत्पत्ति धीरे धीरे प्रलय भी नहीं है। इतना ही नहीं वहाँ जीवन मिरतु न कुल सुख विघ्नार्थ। ऐसा स्वाम तो ब्रह्माण्ड भर में बूढ़ निकालना कठिन होगा। इससे भी बढ़ कर 'राति दिवस तह नाहि।' इसकी भी सम्भावना हो सकती है, लेकिन उसने तो प्रकृति के मूल भूत पदार्थों तत्त्वों की स्थिति को भी स्वीकार नहीं किया—'जमु नहीं पवनु पावकु कुनि नाहीं। ऐसे स्वाम पर ही तो अनुपम और अनम्य की स्थिति हो सकती है। 'उहा सूरज नहीं खन्द'१० क्योंकि उसे तो किसी अन्य ज्योति से ज्योतिष्ठ होने की प्रावश्यकता नहीं। सम्पूर्ण वाङ्मय का साधन जो वाचन प्रसार है, इन्हीं में तीनों शोक एवं सम्पूर्ण सृष्टि धा जाती है, लेकिन 'धोइ धखर इन महि नाही क्योंकि 'ए धखर खिरि जाहिग'११ प्रथम प्रहृ को स्थिति तो सम्पूर्ण वाङ्मय में भी नहीं धा पाती, क्योंकि यह सीमित और मरबुर है। लेकिन यह इन गुणों की सीमाओं की परिधि से बाहर है कि उसकी स्थिति कहीं भी नहीं, लेकिन हम यह भी मूल नहीं सकते कि सत्य व्यापक एक सर्वान्तर्यामी होने के कारण वह 'सगल घट भीतर'१२ निवास करता है 'इस घर मह है।' १३ वह न केवल इस घट रूपी घर में है अपितु उसकी इससे भी सूक्ष्म स्थिति है, अन्यथा घट के नष्ट हो जाने पर उसकी सत्ता कहाँ? लेकिन ऐसा नहीं होता। 'हिरदं कमल महि हरि का बास'१४ इस स्पून देह में भी उसका

70 पृ ११६२, १६।

71 अ. ४-२, २६।

73 पृ. ३४८, ४।

71 पृ ३४०।

72 पृ० ११६२, ४।

निवास स्याम हृदय है अतः विम महि छोमि' क्योंकि कबीर को पूर्ण विश्वास है कि 'एही ठरर मुकामा' 74 भक्त अनन्य भक्ति से उसे हृदय में अनुभव कर सकता है, क्योंकि कबीर ने स्वतः ऐसा किया है। योगियों के लिए उसने 'अगम द्र गम रचिधा' और यह दुग है सहस्रदल कमल का। वहाँ निरन्तर प्रकाश रहता है, तथा वही अनहृद नाद होता है जिसके ध्यान से वहाँ पहुँचने वाला जीव ही अनुभव कर कर पाता है, लेकिन उसके रहस्य को शेषमाग तक नहीं समझ सकता। अन्यत्र स्थिति को और स्पष्ट हुए कहा है कि सहस्रदल कमल में ब्रह्मरघ है उसी में ब्रह्मरसामृत का 'सरवर भर' है जिसका पान करने में ही मानव-जीवन की सफलता है। 75 शौकियों को भी कबीर ने पुकार कर कहा है कि 'तन महि हरि' 76 अतः उसे बाहर दूड़ने का सब प्रयत्न व्यर्थ है अन्तर्मुखी बनो, उसे अंतर में अनुभव कर उससे ऐक्य स्थापित कर जीवन को सार्थक करो। 'तनु करि मटुकी मन माहि बिलोई' देह की मटकी में मन को विलोने पर ही गुरु की कृपा से जीव 'पावै अमृत धारा' 77 'अहिम अलह मुकामा' 78 मान कर वांग देने वाले मुल्मा को भी उसने ललकारा है 'साई न बहरा होई' 'आ कारन तू वांग देहि क्योंकि वह तो विमहि भीतर होई' 80 ब्रह्मानुभूति कर जब उससे ऐक्य ही स्थापित हो गया, तब पुनः कबीर

74 पृ. १३४६, १।

75 पृ. ११६२, १६।

76 पृ. ६६६, ४।

77 पृ. ८७०, ३।

78 पृ. ४७८, १०।

79 पृ. १३४६, २।

80 श्लोक १८४।

को ब्रह्म की स्थिति के विषय में भ्रम हो गया बहु अपने  
 ध्यासे हो पूछता है कि 'पीठ महि जीउ वसे' अथवा 'जीउ महि  
 वसे कि पीठ' १०१ कितनी मधुर सरस और आह्लादक अवस्था  
 है भव तो ब्रह्म स्थिति के ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं  
 रहती क्योंकि ब्रह्म-स्थिति का बोध जिस साध्य का साधन  
 या उसकी प्राप्ति के वाद् साधन का महत्त्व ही क्या ?

जिस सर्व-व्यापक की स्थिति का कुछ ध्यासाध मिला  
 है, उस अक्षय के रूप की कल्पना भी कुछ कम मधुर और  
 अनुपयुक्त न होगी। उसके विराट रूप का कुछ अनुमान तो  
 हमी से लग सकता है कि 'रोमावलि कोटि भठारह भार' १०२  
 भठारह करोड़ पवत गृहमाए तो उसकी रोमावलि मात्र  
 है और कोटि जग आके दरवार।' अथ उसके इस विराट  
 रूप के अनुरूप ही बरोहों इन्द्र 'आके सेवा करहि' अनन्त  
 ब्रह्मा उसके गुण गान में 'वेद उचरे' सेनिन इतना होठे हुए  
 भी बहु एसा है 'आके रेल न रूप' १०३। कितना अद्भुत  
 विरोधाभास है और है सत्य ! क्योंकि निगुण बहु तो  
 सगुण भी नहीं बनता फिर साधार को तो बात ही कही ?  
 सब-व्यापक होता हुआ भी बहु तो दून्य मण्डल है। सर्व-स्रष्टा  
 भी सम्पूर्ण स्रष्टाण्ड में रमा हुआ है, लेकिन केवल 'सिधाम  
 मूर्ति नाहि' १०४ अथ 'भाटी एक मेस धरि नाता' १०५ उसके  
 रूप का न तो किसी सीमा में बाधा आ सकता है और न

81 साक २२६।

82. पृ. ११६२, २०।

83 पृ २२७, १०।

84 पृ ५२७, १।

85 अ०८, १७।

किसी आकार में ही रक्खा जा सकता है या देखा जा सकता है। सम्पूर्ण प्रकृति में उसी के दर्शन होते हैं, लेकिन किसी एक स्थल पर उसके दर्शन नहीं होते। इतना ही नहीं 'विनु पप चने सुनी बिमु काना।' सौकिक रूप से रहित होठ हुए भी सर्व-गुण सम्पन्न है और बिना किसी अनुविधा के सभी काय कर लेता है। कुम मिमा कर बहु रूप, रग और आकार से अतीत है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार निगुण और सगुण से परे वह गुणातीत है।<sup>87</sup>

इससे कबीर के ब्रह्म का रूप स्पष्ट है लेकिन उद्योग स्वरूप अवतार राम या कृष्ण की रूपक भी बहुत स्थानों पर मिलती है, इससे हम उसे अवतार में विश्वासी नहीं कह सकते। यह साहित्यिक परम्पराएं और सामाजिक जीवन के लिए उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत स्थल हैं, अतः उनके आधार पर कबीर में 'आकार ब्रह्म के दर्शन करना भ्रम होगी। इतना ही नहीं, बहुत से स्थलों पर तो उन्होंने 'बीठुल 'पीताम्बर' 'गम आदि पद्यों का प्रयोग भी मिराकार के लिये ही किया है।<sup>88</sup> अपने राम' को 'दाशरथि' न कह कर उन्होंने इस भ्रम का निवारण भी कर दिया है। उसके रूप के दर्शन और आख्यायन में अपने आपको असमय पाकर अन्त में उसमें कहा है कि न तो उसकी उपमा दी जा सकती है और न ही किसी से तुलना की जा सकती है। जर्म जडुओं से उसे देखा नहीं जा सकता, धर्म इन्द्रियों से उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता और बुद्धि

86 पृ २७२, ११।

87 पृ ११६२, १६।

88 पृ ८२५, ६, पृ. ४७८, १३, पृ ३३५, ५५।

से भी उसे जाना नहीं जा सकता। एसा 'उत्तम मनुष्य' जो है वह तो केवल 'ज्योति सत्पुत्री' है।<sup>80</sup> अतः उसकी सत्ता की तरह उसके रूप को भी केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

### ब्रह्म का आत्मा त सम्बन्ध

'इह राम का मंसु'<sup>80</sup> यह आत्मा ब्रह्म का अंश है और इसकी उत्पत्ति भी उसी में से हुई है। लेकिन विश्व में आ जाने के बाद उसकी स्थिति उसी प्रकार की हो जाती है 'अस कागद पर मिट न मंसु।' इससे स्पष्ट है कि इसका अपना अस्तित्व धन जाता है। सोच में निकट-तम एक उत्कृष्ट सम्बन्ध दाम्पत्य ही है अतः कबीर आत्मा को सम्बोधित करके रहता है, कि 'अग जीवन प्राण अघारा' ब्रह्म को 'चेरी तू राम न करसि मतरा।'<sup>81</sup> आत्मा को भी यह अनुभव करने से देर नहीं लगती। आत्मा न कबीर की सीख को स्वीकार किया और नव-अधु को भाँति 'भू भट काढ़ि गई।'<sup>82</sup> अपने पति के समीप यद्यपि हृदय से पति की महत्ता को पूज्यतया अनुभव कर लिया है, फिर भी उसे सन्देह बना हुआ है कि न जानव किमा करसी पीढ़'<sup>83</sup> क्योंकि जीवन का जीवन तो उसे पहिचामन में ही भ्यतीत हो गया जो कि वास्तविक संयोग का समय था, लेकिन उसे अपने पति पर बिश्वास है कि वह उस पूज्य तथा अपना होगा अपने बिश्वास का सत्य पाकर वह धाह्याद

80 पृ. १४४, ११।

90 पृ. ८७१, ५।

91 पृ. १२५, ५।

92 पृ. ४८४, ३४।

93 पृ. ७१२, ०।

में पुकार उठती है 'हारे मेरो पिठ हउ हरि की बहुरिया ।'<sup>94</sup> पत्नी पति से धीरे धीरे अनिच्छता बढ़ाती चमती है अब तक उनमें पूर्ण ऐश्वर्य नहीं हो जाता । एक्य ऐसा जिसमें दोनों का अलग अस्तित्व किसी भी प्रकार अवशिष्ट न रह जावे । हरदी पीपरी जूना ऊबन'<sup>95</sup> दोनों मिलकर अरुण हो जाते हैं, दोनों के रंग ही नहीं, रूप और गुण में भी परिवर्तन आ जाता है और इस प्रकार दोनों अपनी अलग अलग सत्ता समाप्त कर महीन रूप ग्रहण कर लेते हैं । ऐसा ही प्रथम धन्य है जिसमें त्याग हो—व्यक्तित्व का अस्तित्व का । बहुरिया आत्मा की महत्ता इसी में है, कि इस प्रकार वह अपना अस्तित्व पति में ही विलीन कर दे । 'इहु अठ आहु जब मिले तब मिलन न जाने कोइ ।'<sup>96</sup> इस मिलन को न कोई जान ही सकता है क्योंकि 'एक ओसि एका मिसि'<sup>97</sup> यह तो एक ज्योति का दूसरी ज्योति में लीन होना है और उसका तेज तेजु समाना'<sup>98</sup> तेज महातेज में समाहित हो गया । इस प्रकार ब्रह्म से उद्भूत होकर लोक में विधरन करने वाली आत्मा—उसकी पत्नी बनकर उससे ऐसा ऐश्वर्य विधान करती है जो अनायास ही उसने अस्तित्व तक को उसी में विलीन कर देता है और वह सब क लिए अपने उद्गम स्रोत में आ मिलती है ।

यह आत्मा हो वेहचारी हाने पर जीव का रूप ग्रहण करती है । इस प्रकार जीव के दो अंश हैं—आत्मा और देह ।

94 पृ ६६१ १ ।

95 लोक १६ ५० ।

96 पृ ३४२ ३८ ।

97 पृ ३३५ १५ ।

98 पृ ८५०, ११

अनी हमने ऊपर देखा है, कि आत्मा का उद्भव-स्वप्न प्रकृत है और उसमें 'भूरि सकेसि क पुरीषा वाधी देह'<sup>99</sup> थोड़ी-सी धूम सपुहीत कर उसकी ओ पुष्टिया वाधी—उसी से मानव देह का निर्माण हुआ, जिसमें प्राण-तन्त्र का संचार होने पर वह जीव कहलाया। सर्व-व्यापक ऐसे जीव के भी 'घट घट निबासी है, उसी से उसका महत्त्व बना हुआ है।'<sup>100</sup> एकमात्र उत्पादक प्रकृत ही तो जीव का स्वामी है और जब तक जीव उसे पहिचान न ले, तब तक उनका इस संसार से छुटकारा सम्भव नहीं <sup>101</sup> क्योंकि—

'God known is no God and God realised is no more a God

'तुम दाते हम सदा भित्तारी' मौक्तिक जीव को जब अपनी सीमित सामर्थ्य और धारणियों का ध्यान आता है तथा अपने अभावों की पूर्ति के लिए उसे किसी सहायक की आवश्यकता अनुभव होती है, तब अनायास ही अपने सब-नामध, सब-दाता पिता व सम्पूर्ण आत्मी फँसा देता है। दुःसगति के कारण काम क्रोध लोभ मद, माह मत्सर आदि दुगुणों का शिकार जीव अपनी हीनता का अनुभव कर कहता है, 'योविन्द हम ऐसे अपराधी जिसने अन्ध इने वाली की 'भाउ भगति नहीं साथी' और बिद्व के सब दुगुण प्रबिठ कर लिए हैं अतः हे भगवन् ! कष्ट में पड़ हुए अब अपने इस जन को 'रातनु' और अपराधी वह बिश्वास दिसवाता है

99 श्लोक १५८।

100 २ ३४४ ७।

101 २. ३४०, ८

1 २ ११६१ १४।



कि धम 'सिवा करउ तुम्हारी ।' १ भगवान् का वह अपराधी है और वह इसका रक्षक एवं भाष्य-स्यस । इतना ही नहीं परिणाम स्वरूप वह भगवान् का सेवक भी बन जाता है । उसका समीप रहने का सा सेवक ही धीरे धीरे उसके महात्म्य को अनुभव करता हुआ — मन्त्र बन बैठता है २ यह मन्त्र उससे घनिष्ठ होता जाता है और एतत् सम्बन्ध स्थापित करने में प्रयत्नशील रहता है । ज्यो २ 'बाठी सूखी और 'सेलु निखूटा' र्यों २ वेह का धत समीप भा गया और धीरे धीरे २ 'तूटी तलु न बज रवानु ।' ४ तब वेह का पक्षी उड़कर प्रपन्न भावि स्थान को जमा जाता है । उससे सम्बन्ध जोड़ते ही जीव को इस जगत में और कोई दृष्टिगोचर ही नहीं होता, वह कहता है हमारा को नहीं हम किसहू के नाहि । इन्ही लिए धार्ती धार जिमि इहु रजगु रजाइभा तिस ही माहि समाहि । ५ 'मदी तरंग की तरह एक्य होगा और महा गुन्य में गुन्य विखीन हो जावेगा, जिमका कुछ पता भी न लग सकगा । ६ और पुनः कभी पुनरागमन भी न होगा । कबीर को इतने मात्र से मन्तोप नहीं, वह तो जीव की सत्ता को और भी महत्ता प्रदान करते हुए कहता है कि धनहद भवण करने के बाद एक 'अचरजु मइया' और वह आश्चर्य क्या था कि 'जीव ते छीउ जीव तो स्वयमेव दिव में परिणत हो गया ।' इस ऐक्य के परिणाम-स्वरूप धनुमूर्ति में भी परिवर्तन

2 पृ ३७१, ८ ।  
4 पृ ४७८ ११ ।  
6 पृ ११०३, ४ ।

3 पृ ३३१, ४२ ।  
5 श्लोक २१४ ।  
7 पृ ३४४, १३ ।

घा गया। 'तब घाही घाहु एहु न हाई।' कि घव जीव की मत्ता ही न रह गई घौर सबन सर्व-स्वापक ही घा गया। अनुमति का यह धरम ही तो मानव-जीवन का साध्य है, यही जीव के देहधारी होने की सार्थकता है।

### ब्रह्म-कबीर सम्बन्ध

कबीर देहधारी जीव भबभम थे, लेकिन अपनी अनुमति के आधार पर ब्रह्म से उन्होंने जो सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, वह प्रत्येक जीव का नहीं हो सकता। घास्मीयता ने उनकी अनुमति को सदाकत अनिष्यक्ति धकर भी हृदयघाही बना दिया है। 'मुई मेंरी माई' मौकिक भा क भनाव में उसने सम्पूर्ण लंह उस परम पिता से पाया था—इसोनिय कहा है—'हुठ पूतु तेरा तू बापू मेरा।'<sup>8</sup> उतरावक पिता ही पासनहार, रक्षक व सत्पुरु के माध्यम से माग-दराक रहा है। इसोनिय नि सकोष उससे अपराधों की क्षमा मांगने जाता घाता है 'रामईया हुठ बासकु तेरा।'<sup>9</sup> कहते हुए अपनी धीनता प्रगटाता है। 'तुम समसरि नाही दइघामु माहि समसरि पापी।'<sup>10</sup> उसके परचा ताप से बिगलित हृदय की करुण ध्वनि से उसकी विनयिता का भी परिषय भिसता है। इतना ही नहीं, पापी न अपना पूरा परिषय दिया है 'जा का ठाकुरु तुही सारिसभर मोहि

8. प. १४३, ३३

9 प ४५६, ३।

10 प ४५८, १०।

11 प ८२६, ३।

कबीरा नाच रे ।<sup>12</sup> लेकिन भगवान नहीं पसीजे, उनके द्वार पर तो सदा ही न जाने कितने पापियों की भीड़ जो लगी रहती है । कबीर ने उसने नाम को आधार बनाया था अतः उसे पिता नहीं और उसने स्पष्ट ही कहा है 'कहि कबीर गुनामु वर का जीघाई मानै मारि ।<sup>13</sup> हव है आत्म-समपण की और भगवत्स्वरूप की । सम्भवतः इसी लिए जिस हाथी के सम्मुख उसे कुचमने के लिए छोड़ा था उसी ने धाकर उसे नमस्कार किया था ।<sup>14</sup> और जिस जंजीर से बांध कर उसे गंगा में डूबने के लिए फंका था उस जंजीर को ही गंगा ने तोड़ कर बहा दिया था ।<sup>15</sup> इन घटनाओं में भीतिक सत्य हो या न ? लेकिन इनके असाहित प्राणवान् सत्य महान है । भक्त के विश्वास में अद्वितीय शक्ति है । कुत्ते की भाँति कुसज्जता प्रगटाते हुए उसने कहा है 'भुतिआ मेरा नाच' और 'गले हमारे जेबरो जहं सीपे तहं आध'<sup>16</sup> सबक को सवतोभावेन स्वामी की सेवा करनी चाहिए—ऐसे उत्कृष्ट सेवक के ही गुण हमें कबीर में मिलते हैं । इतना ही नहीं, उसने अपने आपको पूणत स्वामी पर निर्भर बना दिया है—'तू असमिधि हउ अस का मीनु'<sup>17</sup> और इस रूप में वह सदा अस में रहता है, क्योंकि असहि विनु जीनु । उसके पिजरे का वह तोता है उसके वृक्ष पर रहने वाला वह पक्षी है ऐसी अवस्था में यम-

12 पृ ३३८, ६६ ।

14 पृ ८७०, ४ ।

16 खोड ७४ ।

13 पृ. ३३८, ६६ ।

15 पृ ११३२, १८ ।

17 पृ ३२३, २ ।

राज उसका विगाड़ ही क्या सकता है। लेकिन भगवान से यह सब सम्बन्ध स्थापित करके भी उसे सम्ताप नहीं हाता— इसलिये कबीर की भारना पुकार उठती है—‘गाउ गाउ री दुसहनी भगसाधार।’ यह संयमाधार गाने की आवश्यकता क्यों है? क्योंकि ‘राम उठ मित्र भावरि सैहउ घोर भवरे लेकर ‘घाठम तिह रंग रासी।’ अब अपने आपको भूष तथा उसके रंग में रंग दिया, तब उसने अनुभव किया, कि ‘मेरे गृह धाये राजा राम भठारा।’ उसके इस रूप को देखने के लिये असंख्य ‘सुरि नर मुनि जन धाये घोर उनके मामन ही कबीर कहते हैं, कि ‘मोहि विधाहि बले है पुरख एक भगवाना।<sup>18</sup> ‘हरि मोर पिठ’ घोर कबीर ‘हरि की बहुरिया’ बन चुका है। ‘राम बडे मै तनक महुरोधा’ कह कर उसने अपने आप को उनस घोड़ा सा छोटा स्वीकार किया है। यद्यपि ‘एक सगि’ उनका ‘बसेरा’ है, फिर भी पत्नी-कबीर अनुभव करते हैं, कि उनका मिलन दुहेरा<sup>19</sup> मिलन कठिन है पति नाराज जा हो गये हैं। उन्हे पूछती है—‘बरबट्टु दे मारउ काह कउ मारे’ क्यों इस प्रकार मुह मोड कर तुम मुझ मारते हो? अपने पालिश्रम का पूरा बिश्वास विमवात हुए कहती है—‘अनु तनु घोरहि धनु म मोरउ’ घोर मुझ पर कितनी ही विपत्ति क्यों न पड़ ता भी तुमसे श्रौति न ताउठ। भगवान् की प्रियतमा बनने में जिस अनन्यता का आवश्यकता है उसी क कारण ता उसने सोई का पति बनना प्रत्याकार करते हुए उस म नाता तोड दिया है और भगवान का बिश्वास दिसवाया

18 व ४८२, २४।

19 घ. ४८१, ३०।

‘हम तुम बीचु भइयो नहीं कोई । इसलिए ‘धुमहि सुकठ मारि हम सोई ।’<sup>20</sup> पत्नी उसके इतना निकट घा गयी है कि वह तो सदा उसी के ‘रंगि राती’<sup>20A</sup> और उसी के आनन्द में तल्लीन हो जाती है । धीरे-२ उसने अपना महत्त्व और अस्तित्व ही समाप्त करने का प्रयत्न किया है—पूर्ण आत्म समर्पण के माध्यम से ‘तेरा तुम कठ सचपसे किधा लाग मेरा ।’<sup>21</sup> उससे आत्मीयता स्थापित करने में इससे कम अमन्यता साधक भी तो नहीं हो सकती । सिधोरा (सती होते समय पति से सदा मिले रहने का चिह्न) ओ हाथ में ले लिया है तब उसे संसार की चिन्ता ही क्या ?<sup>22</sup> क्योंकि उसने तो ‘हरि भेटत घापु मिटाइया ।’<sup>23</sup> इसी लिए ‘सा बिस मरने से षगु डरे’ उसी मृत्यु में कबीर को आनन्द मिलता है क्योंकि देह मुक्त होकर ही तो वह पूर्ण-ऐक्य का आनन्दोपभोग कर सकता है । ‘मरने ही से पाइए पुरनू परमामन्दु ।’<sup>24</sup> इस प्रकार उसने अपने प्राण-तन्तुओं से ऐसा मिमा दिया कि दोनों में किसी भेद का पता ही नहीं लगता । ‘ओरा गरि पानी भइघा’<sup>25</sup> और पानी में जा मिमा तो उसकी सत्ता का कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं रहता, इसीमिये ‘राम कबीरा एक भये हैं कोठ न सकै पछानी’<sup>26</sup> उनके इस ऐक्य का किसी को बोध भी नहीं हो सकता । किसी को तो क्या—यह ऐक्य

20 पृ ४८४, २२ ।

21 अंक २०३ ।

23 पृ ६२५, ६ ।

25 श्लोक १७७ ।

20A पृ ४८५, २ ।

22 श्लोक ७१ ।

24 श्लोक २२ ।

26 पृ ६६६, ६ ।

इतना धनोभूत होजाता कि स्वतः उन्हें भी इसका भ्राम नहीं हा पाता, इसी लिये तो वे कहते ह— पीछ महि जीठ वसं शोध महि वसं कि पीठ । तस्मीनता में इतना शो यमे कि यही नहीं बोध होता कि मह हृदय है आ भगवत्तत्मीन है अथवा भगवान ही हृदय में आ बस है इतना ही नहीं, इसका करम तो वहाँ आता है वहाँ वे कहते है कि 'पठ महि जीठ कि पीठ' हृद् है प्रभुभूति की घोर धारमीयता की । और एसा हो भी क्यों न — क्योंकि यह ब्रह्म अथ उसके लिये कोई बाहर का तन्त्र नहीं है— बस्तुतः वह तो 'सू सू करता सू हुषा' अपन और परामे के भेद को उसने इतना अधिक मिटा दिया है, कि अपना अस्तित्व ही मृत्न करके वह स्वतः ही 'बह' बन गया है और अथ उसे 'सू' ही 'सू' दृष्टिगोचर होता है । इसी का वर्णों में 'तस्वममि' कहा गया है जो सन्तों में 'साऽहम्' के रूप में अधिक प्रचलित हुआ था और धात्र तक भारत के बहुत से सन्त-सम्प्रदायों में उसका यह रूप 'गुरुमन्त्र' के रूप में स्वीकार किया है । वागमिक शक्ति के तर्कधारित अद्वैत की ही सन्त कवीर ने अनुभूतिपरक व्याख्या प्रस्तुत की जो अधिक हृदयग्राही व प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई ।

यद्यपि मन्त्र, सन्त और गुरु भी जीव कोटि के ही हैं सकल अपने सदाचार तथा आन्तरिक गुणों व विकास से उन्होंने अपने को उन्कृष्ट मानव बना लिया है और ब्रह्म

से उनका अधिक सम्बन्ध बनिष्ठ व धार्मिकता पूरा हा जाता है। सर्पिणी माया से बच कर जीव जब ब्रह्मोन्मुख होता है और भजन द्वारा उससे धार्मिकता का सम्बन्ध स्थापित करता है तब वह भक्त कोटि में आ जाता है। और कष्ट में पड़े हुए ऐसे भक्त का रक्षक व उद्धारक प्रह्लाद है।<sup>29</sup> प्रह्लाद प्रादि अग्यात्म भक्तों की रक्षा के लिये पट्टेपने वाले भगवान का वरुण अनेक स्वर्गों पर भ्रमता है।<sup>30</sup> सबप्राणी यम समुद्र-में अर्द्ध है<sup>31</sup> लेकिन भक्त पर उसका कोई बस नहीं आता। स्वतः प्रह्लादानुभूति कर जब भक्त सोक-कस्याप की भावना से माग प्रवृत्तन का कार्य भी करने लगता है तब वह सन्त अवस्था को प्राप्त करता है। जीव को भव-पार से जाने में ऐसे सन्त का विशेष महत्त्व है क्योंकि उनकी सगति से ही जीव माया के आवरण से बच सकता है। अतः श्वार ने सवा क दो ही अधिकारी बताए हैं—  
 एक सन्तु इकु रामु। और इतम मो प्राधिक उपादेम सन्त ह,  
 क्योंकि रामु जुदाता मुक्ति का सन्तु अपावे नाम।<sup>32</sup>  
 मध्यकालीन सन्त को मातृ की प्राबल्यता नहीं, उसे ता नाम' में तन्नीन होमा है, जो अपन आप में मोक्ष से भी कही अधिक सुखदायी स्थिति है। ऐसे सन्त को निन्दा नहीं करनी चाहिए क्यों कि सन्त रामु है एकु।<sup>33</sup> और गुरु—  
 उसके विना भगवत्प्राप्ति की तो बात ही दूर रही—भगवत् दक्षम भी सम्भव नहीं—क्योंकि जीव और 'सतिगुरु' व मध्य

28 घ. १२२३, ३।

30 घ. १२६४, ४।

31 घ. २२५, १।

32. रत्नाक १६४।

33 घ. ७२३, ५।

‘सत्गुरु’ ही तो एक मात्र सेतु व साधन है और वह भी भगवत्कृपा व बिना प्राप्य नहीं।<sup>31</sup> उसके मिमने पर ‘गुरपरसादी हरि भनु पाइया।’<sup>32</sup> इसलिये वह न केवल ब्रह्म के समपद का ही अधिकारी है।<sup>33</sup> अपितु सन्तों का अनुमूर्ति गत तक दार्शनिकों के एक से कहीं से अधिक सशक्त हृदय प्राप्ति और प्रभावोत्पादक है—

गुरु गोविन्द दोनों लखे, काके लागू पाव ।

बसिहारी तिन गुरु की, जिन गोविन्द दिमो दिवाय ।

सो यह है गुरु और गोविन्द का महत्त्व व परस्पर सम्बन्ध। सम्पूर्ण सन्त साहित्य में ही भौतिक साध्य से मौकिक साधन का अधिक महत्त्व है क्योंकि वह लम्बे है और क्रियात्मक दृष्टि से अनुकरणीय भी।

### ब्रह्म और माया का सम्बन्ध

ब्रह्म ही माया का उत्पादक है, स्थिति में आते ही माया न केवल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भरमाना प्रारम्भ कर देती है।<sup>34</sup> अपितु वह तो ब्रह्म को ही अपना स्वामी भी बना लेना चाहती है ‘जोइ ससमु है जाइया । पूति बापु सेमाइया।’<sup>35</sup> लेकिन जहाँ उसकी क्षेम का पात्र नहीं बनता और वह सबका माया निरपेदा रूप धारण किए रहता है, इतना ही नहीं उसका उत्पादक होकर भी उसमें ब्रह्म का भ्रंश नहीं— इस प्रकार माया में ब्रह्म-निरपेदा है।<sup>36</sup> दोनों ही एक

31 पृ. ७२, ७।

36. पृ. ३४३, ७।

38 पृ. ११२४, ३।

35 पृ. २७१, ६।

37 श्लोक १०।

39 पृ. ३६४, २२।



दूसरे से पूषठया निसिप्य रहत हैं, वस्तुत इसी से दोनों की न्यति है क्योंकि माया-सबहित होकर ब्रह्म ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्मभय हाकर माया माया नहीं रहती ।

### ब्रह्म-सृष्टि का सम्बन्ध

प्रागे विये गय सष्टि के विराट रूप का स्रष्टा ब्रह्म ही है । उसने प्रकाश का प्रसार किया इस प्रकाश में से ही सम्पूर्ण अङ्ग और चेतन जगत् का बिकस हुमा । और इस स्रष्टा की ही भनक उसके अणु-परमाणु में मिसती है ।<sup>40</sup> इस प्रकार दोनों का अयोम्याद्यम अनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट होता है क्योंकि एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं और दूसरे के बिना प्रथम की शक्ति के बिकास का क्या परिषय । इतना होते हुए भी सृष्टि ब्रह्म की तरह अनश्वर और अनंत नहीं अपितु परिवर्तनशील वह नश्वर और सांत है ।<sup>41</sup> लेकिन पार्श्विक शकर के बिचार की तरह उसकी कोई सत्ता ही न हो एसी बात नहीं, वह यथाय है, केवल भ्रममात्र नहीं ।

40 पृ १३४६, ३ ।

41 पृ ३४०, ७७ ।

## सृष्टि

‘घोड़ जु घोसहि घंबरि तारे ।  
किमि घोड़ ओते भीवन हारे’ ४३

तारों से भरे आकाश को देख कर कबीर की जिज्ञासा साकार हुई, कि इनका पिछेरा कौन है ? मन्त्र-करण को टटोला तो पता चला कि ‘सारी सिरजनहार की जानै नाही बोइ’ ४३ समस्या उमझ गई, मुलझाने के प्रयत्न में जीव को धामास मिला—‘उघा का मरमु घोही पर जान’ ४४ भक्त और निकट पहुँचा तो उसे सगा कि क जानै आपन घनी’ भयवा के दासु बीबानी होइ। भक्त का आत्म विश्वास बढ़ा और उसने अनुभव करना आरम्भ किया—‘सम महि पसरिया बह्य पसारा’ ४५ यह सृष्टि तो और कुछ नहीं, उसी का प्रसार माप है। यह प्रसार कैसे हुआ, इसके क्रमिक विकास की भी अपनी एक कहानी है—‘भवमि अलह गुर उपाइआ सब प्रयम लला ने प्रकाश को प्रसारित किया और उस ‘एक गुर

४२. पृ ३१६, ७६।

४४ पृ ३३४, ४२।

४३ अक्ष १७६।

४५ पृ. ३२६, २६।

दे समुद्रयु उपविष्टा ।<sup>४६</sup> उसमें भी सूर्य और चाँद के उदय होने के साथ ही साथ 'उद भई सप्त बेहू ।'<sup>४७</sup> विश्व में प्राण तत्व का संचार हुआ और कनस्पति, प्राणी तथा जीव में इसका प्रथम विकास हुआ । प्रायः सम्पूर्ण सन्त-साहित्य में सृष्टि-रचना क्रम का यही विकास देखने को मिलता है ।

'स्वामिकु सप्तक सप्तक महि सासकू पूरि रह्यो सब ठाई' ।<sup>४८</sup>

सम्पूर्ण ब्रह्मांड उन्नी का प्रसार है, अतः सम्पूर्ण ब्रह्मांड में उसकी स्थिति है । रचना के लिये उसे किसी वाह्य उपादान की आवश्यकता नहीं और 'एक माने अनेक भाँति करि साजी साजनहारे' एक ही मिट्टी को विभिन्न रूप प्रदान कर उसने अखिल विश्व का निर्माण किया है और एक मात्र सत्य नहीं सब में है तथा उसी के नियन्त्रण में सृष्टि संसरण कर रही है, क्योंकि 'तिसु का कीमा समु कहु होई । लेकिन कर्ता की कतु स्व-शक्ति का परिचय किसी को नहीं मिल पाता । 'वाचन अक्षर सोक नै समु कहु इनही माहि' सम्पूर्ण सृष्टि तो इन वाचन अक्षरों में ही सीमित है 'ए अक्षर सिरि जाहिने' यह अक्षर और इनसे निर्मित सृष्टि नष्ट हो जावेगी लेकिन इनका निर्माता नहीं ।<sup>४९</sup> 'धरनि अकास को करगहु बनाई तथा सूर्य चन्द्र की धरकियों के सहारे कोरी ने ब्रह्मांड रूपी अस्त्र का बितान बना है, जिस रहस्य को कोई नहीं जानता 'बेबल जोमाहे बर अपना बीमा' और विश्व जुमाहे के सूत में उसने अपना सूत मिलाकर उससे पुनः ऐक्य स्थापित कर

४६ पृ १३४३, ६ ।

४७ श्लोक १७६ ।

४८ पृ १३४६ ३ ।

४९ पृ. ३४०, १ ।

किया है।<sup>50</sup> पितेरे ने जिस महान् चित्र को चमकित किया है, वह 'चित्र बधिर इहै धरमरु' तो उसमने वासा चित्र है, अथः उसे छोड़ पितेरे में चित्र क्याभी।<sup>51</sup> और उसमने वासी वह सृष्टि स्थिर भी तो नहीं—क्योंकि 'नैनन देखत इहु जगु आई'।<sup>52</sup> अथ- सामारिक सम्पत्ति से मोह करने वासी सोई को समझाया है—'जहु उपर्य बिमसं वहि अंसे पुरधिन्न पात'।<sup>53</sup> मखर अगत में कुछ स्वप्न भी तो नहीं बह्या, इन्द्र, शिव आदि के साथ ही साथ 'मैना मन्ता इहु संसार'।<sup>54</sup> अपवित्र यह जगत् 'काजस की कोठरि' है, और 'अये परे तिस पाहि'।<sup>55</sup> फिर निकसने का माय ही कहीं सम्भव है ? उसने स्पष्ट ही जीव को मत्तक किया है, कि 'इक गम नाम बिनु इधा जगु माहया धंष'।<sup>56</sup> इस पीहर में उसे रहना भी तो केवल चार दिन है अथ- भयकरमजत में ही जीवम का सदुपयोग करना चाहिए।<sup>57</sup>

आसिर यह समार है क्या ? 'पप तत बिसचार'।<sup>58</sup> अथ- सौन्दिक सम्पत्ति के कारण अपने आपकी गौरवदीप्त न समझना चाहिए, क्योंकि 'अहु मूरजु जाके तपत रसोई' और 'बंसंगत जाके रूपरे छोई' आज 'निहू रावन घर दीया न

50 अ. 484, 34।

51 अ. 202, 11।

54 अ. 1122, 2।

56 अ. 222, 60।

58 अ. 222, 6।

51 अ. 220, 12।

53 अ. 222, 10।

55 अ. 222, 26।

57 अ. 222, 20।

वाली'।<sup>59</sup> इतना ही नहीं, जिसके पास रक्षा के लिए संकासा कोट्टु समुद्र सी लाई' की मम के जाने की तो 'सिंह रावन पर खबरि न पाई। धत' न केवन सांसारिक सम्पत्ति का अपितु 'धन जोवन का गरबु न कीजै' क्योंकि यह सब तो 'कागद बीच गलि जाहिगा।'<sup>60</sup> ऐसी अवस्था में दुष्कर्मों द्वारा अर्जित धन को संचित करने का क्या लाभ ? क्योंकि 'नांगे धावमु माये जाना'<sup>61</sup> इस लिए क्षणिक जीवन और नदर संसार में भौतिक सम्पत्ति का मोह और संन्य त्याग कर 'राम नाम धनु करि संचळी सो धनु कतही न जावे।'<sup>62</sup> 'नाम' धन अर्जित करो जो कि वास्तविक सम्पत्ति है।

### जीवार्मा

'बहु कवीर इहु राम का धनु।'<sup>63</sup>

आत्मा परमात्मा का अंश है और देहधारी होने पर यही जीव का रूप ग्रहण कर लेती है। 'उपजो पेइ ते'<sup>64</sup> परमात्म-बुझ से उत्पन्न होकर यह प्राणी-जगत् में विचरण करती है और फिर 'परमेशुर परम हंसु से सिधामा।'<sup>65</sup> तो जीव ने आश्चर्यम्वित होकर पूछा 'धवावम हारो कहा गइयो। बेह के धंग और इन्द्रियों के साधन तो बैसे ही प्रतीत होते हैं लेकिन धब 'मुखहु न निकसै बाठा। इसी का उत्तर दिया है कि -

59 पृ. ४८१, २१।

61 पृ. ११५७, ०

63 पृ. ८६१, ५।

65 पृ. ४८०, १८।

60 पृ. ११०६, ११।

62 पृ. ३३६, ५८।

64 खोख १५३।

‘इह तत्र वसतु मुपास की जव भावै लेह सति ।’<sup>66</sup>

यह तो उसी की सम्पत्ति है, जव चाहे ले जावे। ‘इषा मन्दिर महि कौन बसाई’ भातिर इस देह-मन्दिर में बसने वाला मद् कौन है ? दादानिकों के व्रत का श्रेष्ठ स्वल्प प्रसिद्ध है। आत्मा के विषय में कबीर ने उसी शैली का अनुसरण करते हुए लिखा है— ‘ना इह मानसु ना इह देठ न राजा, न मिहारी, न ब्राह्मण, न शत्रिय तथा ना इसु भाई न राहु पूठा ।’ क्योंकि ‘ना इह लोबे न मरता देसा ।’ इस प्रकार ‘ता का धनु न कोऊ पाई ।’<sup>67</sup> लेकिन ‘गुर प्रसादि मे डगरो पाइमा’ वह डगर यही है कि यह ‘राम का धनु’ है। और इसकी स्थिति व सत्ता बेसी है जस कामद पर मिटे न पसु।<sup>68</sup> पटनेम करने वाले मोयो ने ‘वसतु धनुषु बोष पाई’ इम धनुषम वस्तु के चले जाने पर न देह रहा और न देहमारी बाब। सम्भवत इसी लिए जिज्ञासु जीव ने प्रश्न किया— कवनु काजि जगु उपर्ये दिनसे कहहु मोहि समुझइया ।<sup>69</sup> बौद्धिक तक की कसौटी पर इसका उत्तर जचे या न, लेकिन कबीर की धनुभूति इस प्रकार हुई—

‘मिउ प्रतिबिबु बिम्ब कउ मिमो है उदक कुम्भु दिगरामा ।

कहु कबीर ऐसा गुण धनु भागा तउ मनु सुनि समाना ॥’<sup>70</sup>

देह के मष्ट होने पर जसबत् जस में प्रपवा शून्य में

ममा जाना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। सम्भवत इसीलिये ‘इम देही कउ तिमरहि देव ।’<sup>71</sup> इससे देह का महत्त्व (पष्ट

66. श्लोक ५६ ।

68. पृ. ३३६, पं. १ ।

70. पृ. ४२४, १ ।

67. पृ. ८७१, २ ।

69. पृ. ४६४, १ ।

71. पृ. ११२६, २ ।

है। इस देह में निवास करने वाला 'जीव एक घर सगल सरीरा'<sup>72</sup> जीव तो एक ही है लेकिन उसे धारण करने वाले देह अनन्त हैं। और मानव रूप में घाने से पूरव सृष्टि की रचना प्रक्रिया में जीव ने 'असुखावर जयम कीट पतया। घनिक घनम किए बहु रखा।'<sup>73</sup> घम्याम्य रूप धारण किये थे। मानव-जीवन के बिकाम क्रम में वह हैं भी स्वाभाविक। यह ससार इसी सूक्ष्म से सूक्ष्म के बिकास के इतिहास की कहानी है।

वेदानुयायियों ने ब्रह्म को जानने का प्रथम सोपान बताया था 'आत्मानं विद्धि।' उनकी भाषा अधिक शास्त्रिक थी और कबीर की उक्तियाँ हैं अनुभूत्याचारित। बात उन्होंने भी सगमम बही कही है— 'आपू पछाने ठ एके जानै।'<sup>74</sup> उसके जानने का साधन अपने आप को पहिचानना है। जिसने अपने को पहिचान लिया, उसे 'रोमु न बिभार्पे चीनें ताप।'<sup>75</sup> त्रिभिन्न भय के नाश होने पर जीव अन्त करण में ही उसे अनुभव करने भय जाता है। तब सांसारिक सम्पत्ति और सम्बन्धियों को त्याग कर संसार से उदास होकर जीव का 'हसु इकेसा जाई।'<sup>76</sup> क्योंकि ससार से सब सम्बन्ध तो भूठे हैं। यह दुगु भी जीव तो कम करने में भी स्वतन्त्र नहीं क्योंकि उसके चित्त की बात नहीं होती, होता बहो है जो 'हरि करै।'<sup>77</sup> अतः उसे सत्कर्म करने में प्रयत्नशील रहना चाहिए और अपने कार्य को कस पर न छोड़ कर 'काति करेता अबाहि

72. इ. ३३०, ३६।

574. इ. ८२, २।

76. घ. ११२४, ६।

73. घ. ३२५, १२।

75. घ. ३२६, १०।

77. श्लोक २१६।

कर प्रवृत्त करता मु इत्तास ।<sup>78</sup> यथाशीघ्र करते हुए जीवन में प्रागे बढ़ते रहना चाहिए । 'भाटी के हम पुठरे'<sup>79</sup> 'पुसामु घर' के हैं।<sup>80</sup> प्रथम साणिक जीवन का सदुपयोग करने में ही हमारी भलाई है । क्योंकि जीव तो संसार-समुद्र की बह मछली है, जो उससे उत्पन्न होकर-मायाभिन्न होने के कारण संसार में रमण करते हुए पुनः गुरु-कृपा से माया-निर्लिप्त हो उसी में जा मिलती है—'जाहि के संग ते बोधुरा ताहि के सय सागु ।'<sup>81</sup> यह है जीव की स्थिति ।

जीव के स्वरूप निरूपण के बाद आत्मा के आचरण देह का रूप पर विचार करना भी आवश्यक है । जिस प्रकार प्राण-तत्त्व के बिना देह व्यर्थ है, उसी प्रकार देह का महत्त्व तो इतने मात्र से स्पष्ट है, कि उसकी प्राप्ति के लिये 'भुमिरहि मुनि जन सेव' क्योंकि उसके बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं।<sup>82</sup> यह देह क्या है ? 'पानी मैसा माटी घोरी इस माटी की पुठरी जोरि ।'<sup>83</sup> यह काय मयवाच मे किया है । उसने मड्डे से थोड़ी सी मिट्टी उटाई और बिन्दु के साथ साथ माकव-देह का भी निर्माण कर दिया है ।<sup>84</sup> कहीं इसे 'पुरि सर्जिस व पुरिया बांधी'<sup>85</sup> कहा है, तो कहीं 'जस मरी मागरी'<sup>86</sup> बताया है । यह 'अजर वेदा'<sup>87</sup> वस्तु की तरह मष्ट

78 श्लोक १३८ ।

80 श्लोक २१८, ६६ ।

82 श्लोक ११२६, ६ ।

84 श्लोक २२७ ।

88 श्लोक ७३ ।

79 श्लोक ६४ ।

81 श्लोक १२६ ।

83 श्लोक ३३६, ६० ।

85 श्लोक १७८ ।

87 श्लोक ३५ ।



हो जावेगा क्योंकि 'सो तमु अर्भ काठ के सगा ।'<sup>88</sup> और यह ऐसे जसेगा—'हाड जरे बिउ भाकरी केस जरे बिउ बास ।'<sup>89</sup> प्राठ काशीन तारों तथा साप की केषुली के समान इने धार्मिक व नरहर बताया है ।<sup>90</sup> इस देह पर गय करने वालों को समझाया है कि 'असति अरम विसटा के मूँदे पुराण ही के बडे'<sup>91</sup> यह तो सुर्यध-पूष धस्थियों का अममय धावरण है । अतः इस पर गर्ब किए बिना ही इसका समुपयोग करो—क्योंकि 'मानसु अनसु दुसमु है'<sup>92</sup> और यह बार बार नहीं मिलता ।

### जीवन

'इस देहो कउ तिमरहि देब' देह के माध्यम से मानव जीवन के सिन्धु मनुष्य ही नहीं देवता भी है । इतने से ही जीवन का महत्त्व स्पष्ट है और इसको प्राप्ति प्राप्तान भी तो नहीं, लेकिन उसका साधन है मुर सेवा से भगति कमाई, तब इह मानस देही पाई ।'<sup>93</sup> पच प्रवशक गुठ की सेवा कर भक्ति के माध्यम से जिस मानव जीवन को पाया है, उसे व्यर्थ रंभा देना बुद्धिमत्ता नहीं । जग-जीवन का स्वप्न जैसा घटाटे हुए उसन कहा 'जीवनु सुपन समान'<sup>94</sup> स्वप्न-तुस्य इसमिए कहा है कि मानव 'कनक कामिनि भागि' इस मष्ट न कर दे और उसके महत्त्व को समझे, क्योंकि जग जीवनु एसा दुतीय नहीं कोई । यह धनुपम है लेकिन धनुपम, होते हुए भी धार्मिक ही

88 पृ ३२५, ११ ।

90 श्लोक ४० ।

92 श्लोक ३० ।

94 पृ ४८२, २७ ।

89 श्लोक ३६ ।

91 पृ. ११२४, ४

93 पृ. ११४३, २ ।

है मत्र जीवन भर मटकना उचित नहीं, इसी से उसका उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया है—

‘मजहु गोविन्द भूली मठ जाहु ।  
मानस अनम का एही साहु ॥’<sup>95</sup>

जीवन को दस दिन और चार एदन का भी न बता कर केवल रात भर का कहा है, क्योंकि प्रातः तो यमराज प्रतीक्षा कर रहा है।<sup>96</sup> जिस जीव की रैन गई (मुखावस्था म्यम बीत गई) उसे कहा है कि ध्यान रक्षा ‘मठ दिन भी बाइ’ नहीं तो बुद्धावस्था में बासों के पक जान पर जीवन से बेझा कैसे पार होया ?<sup>97</sup> मत्र समय और जीवन को बेकार न गवाओ, हीरे की भाँति ‘अमोनु अनमु है’ इसे ‘कउकी बदसे हारिषा रे’<sup>98</sup> कबीर कल्पना की ऊँची उड़ाने लेने वाले दार्शनिक न थे, अपितु जीवन के मया-सध्य अनुभवों को प्रस्तुत करना उम्होंने अपना ध्येय रक्खा था।

इसीलिए भगवान् से भी उम्होंने कह दिया—‘भूले भगति न कीजे । यह मासा अपनी सीजे ॥’<sup>99</sup> उसे तो प्राध्यात्मिक जीवन को भीतिक जीवन का ही सहज विकास बनाना था—दोनों में ऐक्य स्थापित करना था। उसका धम केवल उच्च पर्वतीय व्यक्तियों के लिए अथवा बौद्धिक चिन्तकों के लिए न था, अपितु मानवीय धरातल पर वह जन-सामान्य के लिए था। इसीलिए वेह को बनाए रखने के लिए भगवान् से यह

95 ११२६, ६।

97 ६६२, ०।

99 ६२६, ११।

96 ६६२, २।

98. ६. ३३२, २६।

सब मांगते हुये भी मिम्के नहो—

‘बुद्ध सेर मांगउ चूना  
पाउ घोट सगि सूना ।’<sup>100</sup>

इस प्रकार सांसारिक जीवन की न्यायाधिक आवश्यकताओं का अभाव उन्हें भी असरता था लेकिन उसके प्रति भासक्ति न थी। वे ‘असपन्ननिवाम्मस’ (पानी में अमिश्रित कमल पत्र की तरह) जीवन का महस्व वेते थे।

सांसारिक सम्बन्ध

हसु इकेसा जाइ  
घौर ‘संगि न कयु मै जाइ ॥’<sup>2</sup>

जीव को जीवन गत सत्य से परिचित करवा दिया, कि यह हंस (आत्मा) तो अकेला ही जावेगा। घौर इस संसार में— कवनु को पुतु पिता को का को। कीन मरे को देइ सम्तापो ॥ तथा ‘कठम को पुरखु कउन की मारी। इष्ठा तत सेहु मरीन बिचारी।’<sup>3</sup> पिता पुत्र की तो बात ही क्या? सांसारिक अनिष्टसम सम्बन्ध नारी के बिषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। यह सम्बन्ध ता केवल कहने मात्र के है, इससे कुछ घाघा करना व्यर्थ है, क्योंकि ‘इष्ठा मन जोवन घर मुत वारा’ अक्सर घाने पर यह सब साप देने वाले नही<sup>4</sup> अतः जीव का इन सब के पासन-पोषण में ही जीवन नहीं विता देना चाहिए<sup>5</sup>

100 पृ ६२६, ११।

1 पृ. ११२४, ६।

2 पृ ३३१, ३६।

3 पृ ३३६ ५६।

4 पृ ७६०, १४।

घौर न ही इनके मोह में फंसे रहना चाहिए।<sup>5</sup> 'कनिक कामतो महासंदुरि' यह समझ कर जिसने 'रामु विसारिओ है भ्रमिमानि।'<sup>6</sup> सुन्दर-स्त्री के धमधम में राम को भुलाने वाले को उसने बताया है, यह सब तो साँप की तरह के भयकर मापी है, घत इनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिस रावण के इकु ममु पूत सवा लख मातो' थे,<sup>7</sup> जबसय पढने पर एक का भी पता नहीं लगा। जीब को यदि इतने पर भी विश्वास सही ता देख ले कि 'देहुरी सठ बरी संग' तथा मरघट सउ ममु सोगु कुटुम्ब गइयो भाग हनु धक्का।' इतना ही नहीं थन फून जोऊ बात न पूछे क वहु कावहु होई।।<sup>8</sup> मां बेचारी सहस्रों पर रोती रह गई घौर भाई उसे उठा कर ले गए। उसने सभी सम्बन्धियों को देख लिया है कोई किसी का नहीं - कोई काहू को नहीं मम देखो ठोक बजाई।<sup>9</sup> घौर फिर लौकिकों के मोह में फंसे जाने वाले से तो भयवान् भी प्रम नहीं करते, घत: इन सम्बन्धियों में फंसे रहना कहाँ तक उचित है? घत सामाजिक कतव्यों का पालन करते हुए जीवन यत एक मात्र सत्य भयबत्सेम को सही भूमना चाहिए।

### यानि भ्रमण

सांसारिक सम्बन्धों के मोह में फंसा रहने का कारण जीब इस आशयमन के बचकर से नहीं छूट पाता। यत जीवन में भगवन्नाम का स्मरण न करने के कारण ही इस

5 पृ २७५, १।

7 पृ ४८१, ८१।

8 पृ ११३।

6 पृ ११५४, ५।

8 पृ ४७७, ३।

योनि में घाना पड़ा ।<sup>10</sup> माया के बस में पड़ा हुआ जीव इस योनि भ्रमण से नहीं निकल पाता ।<sup>11</sup> गुद कृपा से प्राप्त नाम' के सहारे ही वह इस योनि के चक्कर से निकल कर निरंजन की तरह 'अयोनि' हो सकता है,<sup>12</sup> क्योंकि जीव भी तो 'अपना किमा पावै सोई' ।<sup>13</sup>

### गुरु

जीवात्मा को परमात्मा की उत्कृष्टतम देन है सद्गुरु । वह गुरु तो उस तक पहुँचाने में सहायक है । गुण और काय की दृष्टि से कबीर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मध्यकाक्षीन सन्तों का गुरु सगुण भक्तों के अवतारों से कम महत्वपूर्ण नहीं । इतना होते हुए भी वह है जीव ही, केवल एक उत्कृष्ट कोटि का जीव । अतः उसके स्वरूप, गुण एवं कार्य पर विचार करना अनुपयुक्त न होगा ।

कहु कबीर मैं सो गुरु पाइया । जाका माउ विवेकु ॥<sup>14</sup>

कबीर ने तो विवेक को ही गुरु बताया है । वास्तव में विवेक सील वह व्यक्ति ही गुरु है, जिसने पापों इन्द्रियों तथा मन को बस में कर लिया है तथा ब्रह्म को पहिचान लिया है ।<sup>15</sup> पहिचान नहीं लिया, अपितु 'तासु मद मात्रा हो गया है ।<sup>16</sup> एक मात्र सच्चे गुरु के अतिरिक्त और कोई उसे पहिचान भी तो नहीं सकता । और 'विन्दु सतिगुरु बाट न

10 पृ ३, ६, ५६ ।

12. पृ ३३८, ७० ।

14 पृ. ७६३, ५ ।

16. पृ ६६६ २ ।

11 पृ. ६५५, ५ ।

13 पृ ११६१, १५ ।

15 पृ. ८७२, १० ।

पाई।<sup>17</sup> घट उसे प्राप्त करने आवश्यक है और उसका साधन भी एक ही है भगवान् जब हुए कियास मिले गुल्देठ <sup>18</sup> भगवान् का कृपालु बनाने के लिए आवश्यक है, कि मनुष्य सत्कर्म करे।<sup>19</sup> उन्हीं सत्कर्मों से वह भगवत्कृपा का पात्र बन सकता है, और उसी से 'शब्द देने वाले सत्गुरु मिल सकेंगे <sup>20</sup> जिससे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न होगा।

इस प्रकार गुरु को वाक्षा स शिष्य आगना है, और आग कर 'गुरु परसादी हरि धनु पाइया।'<sup>21</sup> इस हरि-धन क द्वारा ही गुरु जीव का उद्धार करता है। उद्धार करने का भी एक क्रम विशेष है। सब से पहले गुरु सांसारिक भ्रम का नाश करता है जिसका साधन है जीव की वासनाओं का नाश।<sup>22</sup> गुरु 'शब्द' देता है जिस शब्द की सहायता से जीव इन्द्रियों का बंध में करता है<sup>23</sup> और इन इन्द्रियों के साथ ही साथ मन का भी बंध में कर लेता है, क्योंकि विकृत मन ही वो देह-गड़ का राजा है।<sup>24</sup> उसे बंध में करने से ही ता 'गुरु प्रसादी जैदेव मामा। भगति क प्रमि इनही है जामा॥'<sup>25</sup> इन भक्तों ने भी भक्ति के महत्त्व को समझा। वह भक्ति जो हृदय में गुरु का शब्द स्थिर करने से उत्पन्न हुई थी। यम से रखा करते हुए ऐसे भक्त को गुरु भव-पार पहुँचा देता है। और गुरु सेवा से

17 पृ. ११६४, ६।

18 पृ. ११०३, ४।

21 पृ. ४४६, १५।

23 पृ. ११६, १४।

25 पृ. ३६०, ३६।

18 पृ. ५७१, ७।

20 पृ. १०४, ८।

22 पृ. ५६७१, १०।

24 पृ. ११६१, १७।

। भगति कमाई ।<sup>16</sup> इसीलिए ता सम्पूर्ण सन्त साहित्य में गुरु-सेवा का विशेष महत्त्व है। एक मात्र सत्य-मार्ग का दर्शन कराने वाले गुरु की शरण में जाना चाहिए।<sup>17</sup> और वह भी ऐसा हो, कि 'सो गुरु करहु जि बहुरि न करना।'<sup>18</sup> ऐसे गुरु की कृपा से ही तो 'धमोन दासु करि सीनो धपना।'<sup>19</sup> उसने जब धपना दास ही बना लिया तब उसमें भौ का लगे रहना स्वाभाविक ही है।<sup>20</sup> गुरु शब्द के माध्यम से ही यह सी भगती है, जिससे स्वतः गुरु न ही हरि के रहस्य को जाना है।<sup>21</sup> इसके लिए बसामनि गुरु सबहु गुरु कीनु रे। और उससे तिसना नामु मद मत्सर फाटि काटि कसु वीनु रे।<sup>22</sup> सभी दुर्गुणों का नाश किया। इस प्रकार दुर्गुणों का नाश कर मन को वृद्ध में कर उससे धमूठ की धार बही जिससे धमद होई सोइ।<sup>23</sup>

ब्रह्म-मनेही बनत ही गुरु ने सब निगमाधों को प्रादाधों में बदल दिया क्योंकि जीव एक बार सत्गुरु से शिक्षित होकर सौकिफ तो क्या पागमीकिक वुलों से भी बच कर धमद हो जाता है।<sup>24</sup> और फिर माया ऐसे जीव का क्या दिगाड सकती है, क्योंकि वह तो स्वयं ही गुरु की मार से 'डरें'।<sup>25</sup> क्योंकि धवसर पाते ही गुरु ने तो तीन शोक की

16 पृ ११२६ ६।

18 पृ ३२७ १८।

20 पृ ०, १।

22 पृ ६६८ १।

24 पृ ८७२, ६।

17 पृ ३३६ ३६।

19 पृ ३३१ ४०।

21 पृ ६४४, १।

23 पृ ३७, २०।

25 पृ ८७१, ७।

विघारों के नाकहू काटि कानहू काटि कान्ठि कूटि के हारी।<sup>२६</sup>  
 इस प्रकार न केवल 'त्रिभुवन ङासिनि' से रक्षा की अपितु  
 यम से मुक्त करने की सामर्थ्य भी प्रदान की।<sup>२७</sup>

गुरु ने ही केवल सत्गुरु से पहिचान करवा दी अपितु  
 उम ज्योति को अन्तर में ज्योतिष भी करवा दिया<sup>२८</sup> इस अन्तः  
 ज्योति को उद्भासित करने ही गुरु ने अन्तर्गति हरिमेटिय  
 हम मिये 'अब मेरा मन कतहू न जाइ'<sup>२९</sup> इसमिये गुरु की  
 इपा से भगवान की प्राप्ति हो गई। 'गुरुमिसत' और उसने  
 एसी महारसु प्रेम प्रेम भक्ति दी जिसन ससार सागर से  
 निसठारियो रे'<sup>३०</sup> जिसस धावागमन का अत्र सदा क लिए  
 मिट गया। अतः सत्गुरु की शरण में अवश्य जाना चाहिए  
 क्योंकि भूल की यह पुडिया गुरु क मिल बिना 'पसटि गई  
 मव खेह'<sup>३१</sup> और कबीर ने भी तो गुरु बनाए थे रामानन्द,  
 मन्तों की वाणी में कषनी और करनी की एकठा का यह ज्वलन्त  
 प्रमाण है।

संत

"सत रामु है एको"<sup>३२</sup> गुरु गोविन्द रूप<sup>३३</sup> होन के कारण  
 जीव योगि में गुरु का स्थान तो है ही ऊपर लेकिन सग्तों  
 ने तो भगवान् से अनेद स्थापित कर लिया। अतः उसका

26. पृ. ४७६, ४।

8 पृ. ४८१, ३१।

१० पृ. ३३५, ५६।

32 पृ. ७६३, ५।

27 पृ. ११३३, ११।

29 पृ. ११०३, ७।

31 रत्नाक १७६।

33 पृ. ११६१, ४०५।



## कबीर का साध्य

जीवन का मर्मज्ञ कबीर अद्वैतवादी संकर की भाँति ज्ञान का वह उपदेश देना नहीं चाहता जिसे सामान्य व्यक्ति न समझ सके और न धरना ही सके। इसी लिये यद्यपि शंकर का अद्वैत बौद्धिकों के मस्तिष्क के लिये पर्याप्त चिन्तन की सामग्री प्रस्तुत कर सख विद्वानों में सम्मानित भी हुआ लेकिन जनता का धर्म कभी न बन सका। उसके विरुद्ध कबीर के सिद्धान्त अनुभूति आधारित होने के कारण तथा क्रियात्मक रूप से धरना प्राप्त भाव पाने के कारण, जीवन के माध्यम से धरना विकास पाने के कारण, सामान्य जन-जन को प्रभावित करने वाले सिद्ध हुए। इसी का प्रभाव है कि कबीर पद्य के संकुचित सम्प्रदाय के बाहर भी सभी संश्लेषित उन्हीं सिद्धान्तों का आधार पर विकसित एवं प्रसारित हुए हैं। मूलतः यही वह पुरातन मानव धर्म है, जिस का स्वाम संसार के सभी धर्मों में अद्युक्त बना हुआ है। दृष्टि भेद सिद्धान्त परिज्ञान में परिवर्तन नहीं लाता, इसी लिये गलत हज़ार बरों में कबीर जसा उग्र होते हुए भी प्रिय व्यक्तित्व भारतीय सितित्व पर पर देखने को नहीं मिलता। उनका साध्य संकर के अर्थ

ब्रह्म से प्रारम्भ न होकर भी जीव के ब्रह्म से एक्य में ही समाप्त अवश्य होता है। उस ऐक्य साध्य तक पहुँचने के बहुत से साधन भी अपने आप में साध्य प्रतीत होते हैं यही कारण है कि उनका स्वाभाविक विकास कम हमें अपनी ओर आकर्षित ही नहीं करता अपितु विषेय रूप से प्रभावित भी करता है। जिन्होंने कबीर की बापी में—विभारपारा में सम्बद्धता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया और प्रबन्ध पत्र आदि विशयों से मुसोमित किया उन्हें यदि उनके साध्य और साधनों में सम्बद्धता न दिखाई दे तो हम प्रबोध कबीर को दोषी नहीं ठहरा सकते। उस के साध्य साधन कम को सम्बद्ध रूप देने का ही यह एक प्रयत्न है।

उस का कथन है कि सर्वे प्रथम जीव को अपने जीवन का उद्देश्य एकमात्र माया से रक्षा ही समझना चाहिये जिस के अग्राह्य साधनों का निर्देश अभ्यन्त है इन साधनों का आधय से जीव भव माया से रक्षित हो जाता है तो वह यम से रक्षित हुआ चाहता है। यस्तुत यम से रक्षा ही भयवन्धन का नाश कर मवसागर से पार पहुँचाती है और इस प्रकार आवायमन के बन्ध से बच कर जीव मोक्ष पद का प्राप्त करता है। मोक्ष प्राप्ति ही ब्रह्म प्राप्ति होती है। ब्रह्म प्राप्ति का स्वरूप उसने ब्रह्म नाम पुन ब्रह्म एव पाम एव ब्रह्मानुभूति कह कर स्पष्ट किया है यह ब्रह्मानुभूति ही मानव जीवम का एक मात्र साध्य है इसी को विद्यपता यही है कि इस के साधन का प्रत्येक स्तर भी अपने आप में साध्य है और वह साधन दैनिक जीवन के वे आचरण हैं जो मानव को भावनाओं को उदास बना

कर उन में अन्तर्हित महत्त्व को उद्भासित करने में सहायक होता है।

माया से रक्षा के कबीर ने सीम साधन बताया है सर्व प्रथम जीव स्वतः प्रयत्न करता है या मानव अथवा विकारों को मुझा कर इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये प्रयत्नशील रहता है बही माया से बच सकता है<sup>१</sup>।

इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये अभ्यास की आवश्यकता है और यह अभ्यास ही वैराग्य की उत्पन्न करता है। जब तक सौकिक वस्तुओं के प्रति बिगड़ न हो, तब तक माया से रक्षा सम्भव नहीं क्योंकि, बिनु वैराग्य न श्रुति मादृषा<sup>२</sup> सारौरिक प्रयत्न एवं साधनों का महत्त्व बताने के बाद यह अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का विषय महत्त्व समझता है। सिमरि सिमरि हरि हरि मति गाइए<sup>३</sup> तमी सब आपत्तियां नष्ट होंगी और ऐसे स्मरण से ही माया दूर भागेगी। लेकिन यह स्मरण 'सतिगुरु से पाइए' तमी स्मरण का महत्त्व ही सकता है। क्योंकि 'गुरु बिना गत नहीं' इस प्रकार उस ने यह स्पष्ट कर दिया कि गुरु ही नाम से जीव का सम्बन्ध जाइ सकता है। और उसी से माया भाग सकती है। बाह्याङ्गवरी वैरागी को भी उसने सतर्क किया है कि माया से रक्षित होने के लिये बाह्य नहीं आन्तरिक वैराग्य की आवश्यकता है जिस के लिये सतगुरु की शरण में जाना होगा<sup>४</sup> यह माया जिस ने संसार के सम्पूर्ण विद्वानों को बस में कर रखा है कबीर के गुरु की दासी बन गई

१ शब्दक ५

३ पृ. ६७१, १ ।

२ पृ. ३०६, ३४ ।

४ पृ. ११०४, ८ ।

है। घौर 'जिनहि बरी तिसु बरी' संत के भी पीछे पड़न वाली यह माया कबन 'गुरु परसादि भारहि डरे' घौर सतगुरु का सामने देख यह भाग सड़ी होती है अतः कृपासु गुरुदेव से मिलते हो उस से रदा होती है। 'नारद के समय को समाप्त कर देन व ली इस माया से कबीर की रक्षा सतगुरु ने ही की थी' इस प्रकार सारे ससार को भरमाने वाली माया से जब तक जीव की रक्षा न हो तब तक वह जीवन में कुछ नहीं कर सकता। सतगुरु के प्रयत्न से जीव जब माया से बच निकलता है तब उसे भयानक समय के दृष्टान्त होते हैं अर्थात् पीछे ही उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि 'सपनी पीठी कहा कर जमरा' इस से स्पष्ट है कि माया बिजेता स्वतः ही समय से रक्षित हो जाता है। योगियों को कबीर ने बताया है कि जब उम्मन मुद्रा में रह कर विद्युत् होकर प्राणायाम पर ध्यायित्य कर लिया तब वह धनभ्यास ही बड़ाबस्मा एवं जीवन घौर मृत्यु से भी रहित हो सकता है।<sup>9</sup>

कूटम मोइ जु मन कउ कूटे,  
मन कूटे तउ बम ते छूटे।<sup>10</sup>

मन को बना में बरने वाला तथा जिहवा से रामामृत पान करने वाला व्यक्ति घनायास ही समय हो जाता है। इस व्यक्ति का 'बहा करे जमना।'<sup>11</sup> इन सब प्रयत्नों से भी

3 पृ. ४०६, ४।

6 पृ. ८७१, ७।

7 पृ. ८०७, ६।

8 पृ. ४८०, १६।

9 पृ. ६७१, १०।

10 पृ. ८७१, १०।

11 पृ. ४०६, ५।

जब तक जीव को पूर्ण विश्वास नहीं होता कि यम से उसकी रक्षा हो सकेगी तब वह ब्रह्मा से यही प्रार्थना करता है कि मुझे यम की यातना से बचाओ ।<sup>12</sup> उस के भिये आश्रय मिमता है उसे गुरु का । क्योंकि गुरु 'उपदेसि काल सिद्धं पुरे'<sup>13</sup> वह काल से भी युद्ध कर सकता है संक्षेप में मूल बात इतनी ही है कि 'जठ पै राम राम रति नाहीं ।

ते समि धरम राइ क जाहीं ॥'<sup>14</sup>

प्रभु का जाप करने वाले कवीर ने अनुभव किया कि 'यम भी मेरा न करे तिराकार' क्योंकि 'जिति-उह् समूधा सिरभिषी'<sup>15</sup> उस प्रभु का कवीर ने जाप जो कर लिया । माया से बचा हुआ जीव यम से भी रक्षित होकर भव आघातों को नाश करने में तत्प्रीन हो आत्मिक उन्नति के पथ पर प्रयसर ही सकेगा ।

भव-वन्धन को नाश कर भव-सागर से पार जान के लिये सर्व प्रथम आवश्यक है कि मानसिक विकारों को दूर किया जाये दूसरे शब्दों में इन्द्रियों के क्रियाकलापों में सतुलन एवं मिश्रण की आवश्यकता है । 'पंच धोर को जानै रीति'<sup>16</sup> इन इन्द्रिय स्पी धोरों को यम में करने का ङग जो जान जायेगा वही तो भव-पार पहुँचेगा । पाप के मार से दबे हुए इस देह स्पी जबर बड़े को संसार से पार उठारना तब तक सम्भव नहीं है जब तक इसे पुष्यों और सत्कर्मों से हत्का

12. पृ ८२६, २ ।

14 पृ ३८४, २ ।

16. पृ ३४४, ३

13 पृ ११५३, ११ ।

15 खोके १४० ।

न कर लिया जाये। इस प्रकार सत्कर्मों द्वारा मन को सम्मार्गी बनाना और उस पर विजय पाना ही भव-पार पहुँचने का एकमात्र साधन है। कवीर के मनु जीर्ण जगु जीतिघा<sup>17</sup> को ही गुरु मानकर न 'मनि जीर्ण जगु जीतु'<sup>18</sup> के रूप में स्वीकार किया है। माया से रक्षा हो जाने पर भी यदि मन को वश में न किया तो भी भव-पार नहीं पहुँचा जा सकता, क्योंकि स्वयं के अधिमाम और अहंकार के कारण ऋषि-मुनितक न बच सके। कवीर माइघा<sup>19</sup> सजी ठ किघा भइघा जठ मामु सजिघा नही जाइ' इस प्रकार भव पार पहुँचने के लिये अहंकार का त्याग नितास्त आवश्यक है। कर्मण्य जीवन का संदेह देने वाले कवीर ने मामव का संकेत किया है कि भव पार पहुँचने के लिये सोते रहने से कुछ न बनेगा, अपितु उसके लिये प्रयत्न दोन रहना ही वा बही व्यक्ति भवपार करेगा वा कर्मण्य जीवन व्यतीत करेगा।<sup>20</sup> भौतिक एतद्वय के साधन जुटाए हुये तथा धारीरिक उपभोग को सामग्री एकत्रित करते हुये जिस न ब्रह्म ज्ञान नहीं प्राप्त किया वह भी भव-पार नहीं पहुँच सकता।<sup>21</sup> अतः धारीरिक तुष्टि में ही लिप्त न रह कर दूनर को जान कर उस में अपने मन को स्थिर कर जो व्यक्ति उस का भजन करता है वह अन्त घनायास ही भव-पार पहुँच जाता है।<sup>22</sup> इस प्रकार सांसारिक सम्बन्धों को त्याग जो

17 पृ. ११ ३, २।

18 अक्ष १२६।

21 पृ ११ ४, ४।

18 पृ ६ ४० १, २८।

20 पृ ६७१ १०।

22 पृ ७६३, ४।

‘हरि धिप्राये वह ‘ओवन्त वग्धम सोरे’<sup>23</sup> जोव के बाह्य प्रयत्नों के बाद भव-सागर पार करने के लिये आवश्यक साधन के रूप में नाम धीरे-धीरे का विद्यप महस्त्व यथाया गया है।

‘जिसने हरि नामा बितु लाह’ उसने ससा नहीं धन्ति परम गति पाइ<sup>24</sup> वस्तुतः गाओ हृदय से सगाये बिना सांसारिक भ्रम एवं भय दूर ही नहीं होते। धीरे-धीरे नाम में भी बाह्याह्वय की अपेक्षा नहीं, इतना भी नहीं नाम भी एकाकी धीरे-धीरे एक ही राम का चाहिये, सरव तिप्रागो जपु केवम रामु<sup>25</sup> धीरे-धीरे जब हृदय में राम ही निवास करने लग गये, तब वह बोहे जाति का जुलाहा ही क्यों न हो, उस के भी ‘भूकहि सरव जंजाम’<sup>26</sup>। जिस ने देह की मटकी मन का विमोहन कर धरद स नाना जोड़ लिया है वही उतरे सोरा वस्तुतः वहा क महस्त्व को न समझने वाले ‘जितु बटि नामु न ज्मजे फूटि मरे अनु सोइ’<sup>27</sup> क्योंकि ‘राम नाम बितु समै बिगूते’<sup>28</sup> क्योंकि उसके नाम के बिना समी छो जा गये। यह सब जानने पर ही कमी २ भगवान् से प्रायना करता है कि मेरे भवगुणों का नाश कर मुझे सम्मति दीजिये धीरे-धीरे मेरा मन धपने में सगाइये। धीरे-धीरे एक बार उसने इस रस का पाग कर लिया तो फिर ‘राम जपठ तनु जरि की न भाइ। राम नाम बितु रहिआ

23 पृ ४८०, १८।

24 पृ० ३३३, ३३।

25 पृ० ३२४, ३।

26 पृ० ८०।

27 पृ ४८८, १।

28. प ३३४, ३५।

29 पृ ७३३, ३।

समाई ।' <sup>30</sup> किसी भी धर्म पर वह नाम को छोड़ने को तैयार नहीं, यद्यपि नाम का रहस्य जाने बिना उसका कोई मूल्य नहीं क्योंकि जिसने 'राम नाम को गति नहीं जानी कैसे उतरसि पारा' <sup>31</sup> उसके लिए तो विना धर्म जाने बेदों पुराणों का पठन भी 'क्षर बन्दन कस भारा' से अधिक कोई मूल्य नहीं रखता, यह धार्मिक एवं बौद्धिक कबीर का मत है लेकिन भक्त कबीर ने तो नाम के महत्त्व को समझाते हुए कहा है कि स्वप्न में बरति हुए भी किसी के मुख से राम निकल गया तो वह भी इतना पवित्र हो गया कि 'साके पग की पानही घेरे तन को चाम' <sup>32</sup> इसी बिभार-भारा की पुष्टि में उन्होंने बताया है कि अजाविस, गम तथा गणिका आदि भी निकुष्ट कम करने वाले 'राम नाम सीने' <sup>33</sup> पार उतर गये । इस सब से स्पष्ट है कि सिद्ध साधक मुनि आदि भी सब प्रयत्न करके हार जाते हैं लेकिन एक नाम नाम कम्पतर ही उन्हें भव पार पहुँचाता है और कबीर को इस बात की प्रामाण्यता है कि उन्होंने ऐसे नाम को पहिचान लिया है । जिसको 'माइघा वपति बुझिघा धंगिघार, मनि संतोखु घाघार' <sup>34</sup> घाघार बनाने पर कबीर के सभी कष्ट पूर हो गए हैं । नाम का महत्त्व न केवल कबीर में ही देखने को मिलता है अपितु सम्पूर्ण सन्त मत इस दृष्टि से उस महान् सन्त का ऋणी है जिसने हजार वर्ष तक भक्त समाज को नामामृत का पात्र करा कर धमर कर दिया । ऐसे नाम का जब जीव को

30. पृ. ३२६, ३३ ।

32. श्लोक ६३ ।

34. पृ. ३३१ ४० ।

31. पृ. ११०१, १ ।

33. पृ. ६६२, ५ ।



अनुभव कराने में सहायक सिद्ध-होता है। नाम का तत्समीन  
 होकर अनवरत स्मरण ही बच है। चौरासी लाख योनियों के  
 बच से बचाने के लिए जीव को इसी बच का सहारा लेना  
 पड़ता है इसीलिए क्षणिक देह द्वारा प्राप्त अपूर्ण समय का  
 अपभ्यय न कर, कबीर ने सभ्येस दिया है कि 'मजहु गोविन्द  
 भूलि मत जाहु' ३३ क्योंकि वृद्धावस्था में जब बापी और देह  
 के अन्य अङ्ग कार्य न करेंगे तब-बच करने की सामर्थ्य ही  
 कहां बाकी रह जायेगी। इसका उपयुक्त साधन कवल मृग  
 की शरण लेना ही है, 'अस मरी गायरी' ३४ यह देह तो  
 क्षणिक ही है मत् जब तक सतगुरु न मिलेगा, तब तक  
 मुक्ति का द्वार न खुल सकेगा, क्योंकि वही तो नाम के महत्त्व  
 को बता कर नाम दे सकता है और यह नाम भी उसकी  
 कृपा के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। उसकी कृपा प्राप्त  
 करन के लिए मानव को सत्कर्मों का आश्रय लेना होगा।  
 सत्कर्म की प्रेरणा सत्संगति से मिल सकती है और सत्संगति  
 भी तो पण्डित भार्य के विना सम्भव नहीं, इस प्रकार बह  
 गुरु ही 'जोति महि मनि असधिद करै' - जिससे इस भवसागर  
 से प्राणी तरै ३५ भव-बन्धन का नाश कर जीव-भवपार पहुँच  
 आता है लेकिन भवपार पहुँच के भी उसे भगवत् प्राप्ति  
 करनी है जिसके लिये आवागमन के बच से, सदा के लिए  
 बचना आवश्यक है। इसी लिय मानव मोक्ष प्राप्ति का इच्छुक  
 बना रहता है—'श्रीम मोह सरव विरसि जाहु' बंधन-मनी-  
 वृत्तियों को बन्धन में रख मनोबिकारों को भुसाने वाला

जीव ही तो मोक्ष प्राप्त करता हुआ युग २ तक भ्रमर फल खावहु<sup>38</sup> गुरु की कृपा से जब वासनाओं की 'भनसु बुझाइया' 39 तभी तो वह जीवत मुक्त हो सकता है। वस्तुतः इन्द्रियों को मारना भयवा उन्हें दमिष्ठ करना ही इस मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है। इन्द्रियों को वश में करने के साथ ही साथ सांसारिक रस का त्याग कर माया में बचना पड़ता है—योगिक क्रियाओं से जो मनहद किगुरी वाजी 40 उसे सुन कर माग माग लड़ी हुई घोर मन,मानन्द से परिपूर्ण हो गया तभी जीव आवागमन के साधन को छोड़ समय पद को प्राप्त कर सकता है। अपने प्रारम्भिक जीवन में कबीर ने युग का बिरोध महत्त्व स्वीकार किया योगी के लिये नव द्वारों को रोक कर दसम-द्वार प्रहारन्द्र को फोस सेने में ही उसके जीवन की मायकता है। क्योंकि वहाँ से ही समुत्त पार बुझावत<sup>41</sup> घोर उस समुत्त रस पान में ही वह समय-पद को समुत्त करता है। स्वतः किये गए प्रयत्नों में हरि सेवा का भी बिरोध महत्त्व है, अन्याय्य देवी देवताओं की पूजा को निस्तार बताते हुए तथा तीयम्मान धारि बाह्याहम्बर्वा को ध्यर्ष का अञ्जाल घोपित करते हुए कबीर ने कहा है कि जो ब्यक्ति राम की सेवा करता है वही जीवत पावहु मोक्ष कुमार<sup>42</sup> घोर यह हरि-सेवक हा है जिसका कास भी कुत्र बिगाद नहीं सकता। अत मोक्ष प्राप्ति के लिये हरि सेवा में ही उत्थीम हो जाना चाहिए।

38 पृ ३३४, २०।

40 पृ ३३५, २३।

39 पृ. ६७१, १०।

41 पृ. ११०३, ३।

महाबली रावण को भी केशों से शीघ्र कर यमराज ने अपना प्रतिबिम्ब बना लिया था, क्योंकि उसने राम के महत्त्व को नहीं समझा था अस्थिर संसार में रावण की इस दुर्दशा को देखते हुए कबीर कहता है कि नाम को अपना लेना चाहिए<sup>42</sup> क्योंकि 'राम नाम विनु मुकसि न होइ' यदि कहीं 'गोबिन्द सिब जागी ता जनम मरम का भरम गइया'<sup>43</sup> जीव का प्रावागमन भगवान् के आदेश से ही होता है। अतः उससे बचने के लिए भी उसी की सहायता प्राप्त करना आवश्यक है<sup>44</sup> और उसके लिए भगवान् की सेवा। क्योंकि सेवा से भगवान् की कृपा प्राप्त हो सकती है। और इस प्रकार 'जिन कउ किरपा करत है गोबिन्दु ते सतसंगी मिलात'<sup>45</sup> और भगवान् की कृपा भी किसी सीमाव्यवधानी को ही प्राप्त होती है जिसे वह कृपा प्राप्त हो गई, वह बनायास ही प्रावागमन के चक्र से निकल जाता है। इस प्रावागमन के चक्र से बचने पर ही जीव को ब्रह्म की प्राप्ति होती है अतः संसार में उसी का नाश करना चाहिए 'जिह भुए सुखु होइ' यही ध्यानन्द ब्रह्म की प्राप्ति है।<sup>46</sup> तामसिक बृत्तिसाधारिक भ्रम तथा आन्तरिक मलिनता को दूर कर यदि बसों द्वारों एवं पाँचों इन्द्रियों से भगवत् स्मरण किया जायेगा तभी उसकी प्राप्ति हो सकेगी<sup>47</sup>। इसकी प्राप्ति के लिए असार एवं अस्थिर जगत में पुत्र, स्त्री,

42. पृ. ३४३, ७६।

44. पृ. ११६२, १६।

46. पृ. १२५२, २।

48. पृ. ११५८, ४।

43. पृ. ११०४, ६।

45. पृ. ११०३, ४।

47. खोख ३।

तथा मीमांसा के वास्तविक रूप को जानकर इनका त्याग करना होगा। और इस प्रकार संसार के प्रति मृतक होने के बाद भी अन्तर में 'ब्रह्मा ध्यानम्' ब्रह्म जिसका के आनन्द की अनुभूति होगी।<sup>49</sup> यौगिक क्रियाओं का महत्व प्रतिपादित करत हुए कहा है निरन्तर अपसक दृष्टि से ब्रह्म की ओर देखते = नेत्र माल हो जाते हैं और इसी अभ्यास से ब्रह्म की प्राप्ति होती है तब धीरे धीरे दृश्य व रसोंक एकाकार हो जाते हैं प्रथवा धरीर की मटकी का मन द्वारा मग्नन करना चाहिए तब अन्तर में ब्रह्मानन्द की अनुभूति हो सकेगी<sup>50</sup>। अन्तर में अज्ञित अन्तर्हृद नाद की जो बीजा बजेगी, उसका स्वर कमी न हूटेगा और इस स्वर का सुनने वाले का मन अमन्द स परिपूर्ण हो जावेगा, वस्तुतः यही ब्रह्म प्राप्ति की अवस्था है।<sup>51</sup>

ब्रह्म प्राप्ति के लिये वैयक्तिक यागसाधना से अधिक महत्व जन सेवा का है युवावस्था में सुदृढ देह से जो व्यक्ति जन सेवा करता है वही 'भाए निरजन देव'<sup>52</sup> कबीर की भक्ति पर व्यंग करती हुई सोई कहती है कि 'मू ड पलोसि कमर बधि पोषी साधुओं को तो कबीर सब कुछ देते हैं लेकिन हमें तो 'कबला' नी नहीं भर पेट मिसठा कबीर उत्तर देते हैं—

'सुनि धंभसी सोई वे पीर, इन्हि मु डीघन भनि सर्यन कबीर।'

अतः उनकी सेवा करने में तुम्हें दुःखी नहीं होना

49 पत्रोक्त ६।

51 प ३३४, ३३।

50 प ४५५, १०।

52. प ११२६, ६।

के परिचित थे यही कारण है कि मयबत् प्राप्ति के बिना ही अन्तर्जगत को अभ्यास द्वारा उद्बुद्ध करने पर भी वे नहीं ब्रह्मरस का पान कर सकते थे । और जब एक बार उनकी सी ब्रह्मसे भग गई, तब वो वे रात दिन उसी में भीन हो गये । अथवा दृष्टि से उन्हें हरि के बिना कुछ दिखता ही नहीं, क्योंकि उनके नेत्र उसी के अनुराग से सात हैं<sup>६६</sup> ।

भाभी मेरे भास की जित देखो तित सास  
खानी देखन में गई मैं भी हो गई सास ।

योगी जो धार्मिक पद चर्कों में सबों को देखता है और उसी में ब्रह्म के दर्शन हो जाते हैं जिस से वह धार्मिक भ्रम में नहीं पड़ता, ऐसी अवस्था में बाहर की दसों दिशाओं में दौड़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसके वो 'बाहरी, भीतरी महिमा प्रकाश'<sup>६७</sup> ।

गुरु द्वारा अनुभूत ज्ञान का प्रकट ही भक्तों तक फैला है और 'दासु मदमाता' जिसकी मस्ती उतरती ही नहीं ऐसे ब्रह्मरस का पान करने वाले कोही वह सीमाग्य-शाली समझता है लोगों के भ्रम को दूर करता हुआ तथा नाम के महत्त्व को बताता हुआ कबोर कहता है कि इस जुसाहे के सामान्य कार्य में कौन अपना अमूल्य जीवन खाये । इसी लिये हाथों से जुसाहे का कार्य करते हुये भी उस के 'हिरदै रामु मुसिरामै' होई<sup>६८</sup> धार्मिक दृष्टि से पूज्य उसने अपने आप को

६६ ६२२, ४ ।

६७ ४ ३५२, ७ ।

६८ ४ ३६६, २ ।

६९ ४ ३७६, २६ ।

राम में तल्लीन कर रखा है इसी लिए वह प्रेम-रस पान कर पाता है और जिस राम के रस्य को 'सनक सनन्दन' यहूत और शेष भी न जान सके वह सन्त सगति रामु रिदे बसाइ<sup>70</sup> यह सब गुरु की कृपा से हाता है लेकिन गुरु की कृपा भी वहाँ कुछ नहीं कर सकती 'अठ रामु न कर महाइ क्योंकि उसकी सहायता के बिना 'जिहु जिहु बासी वगु धरठ सोइ मुरि मुरि जाइ<sup>71</sup> वस्तुतः वही सीमाव्यवसायी है दक्षिण रमु जिनि पाइया' और यह सब भगवत्कृपा से ही सम्भव है।<sup>72</sup> कबीर के साध्य की प्रतिम सीढ़ी है भगवान् में तल्लीनता और उनमें पूर्ण एतय यह अभिस्तम्ब ही जीव की सत्ता को समाप्त कर प्रकृत स्थापित करता है। संसार में मोने बाये जीव को कहा है कि जाय उठो और 'जाके संग ते वीखरा ताहि के संग लागु<sup>73</sup> मोले की तरह पुल कर उस रूपी बह्य में मिलना होगा। सांसारिक वासनाओं से उदासीन हा मन को जोत कर आत्मज्ञान प्राप्त करने बासा हो, अन्तरगत हरि मेटिया<sup>74</sup> यही उससे एतय है ऐसा ऐक्य जहाँ बियोग का प्रत्य ही नहीं उठता। निरन्तर प्रभु का बिचार करते हुए घट में ही अब जीव प्रभु से जोड़ा करने सगता है तब यम तो उससे दूर भाग जाता है और वह यादि पुरख में ही रहै समाइ<sup>75</sup> और कबीर तू तू करता तू हुआ मुक्त महि रहा न हूँ।

70 प. ६६१, १

72 प. ६६६, ४

74 प. ११०३, २।

71 प. १०१६, ६०।

73 प. १००६, १०६।

75 प. ११३, ५६।

सब धाया परका मिटि गइया, अत वेकउ सत हू १६

इस प्रकार जीव अपनी सत्ता को सो कर केवल उसी की सत्ता को अनुभव करने लग जाता है ।

सक्षेपत कबीर ने जीवनोद्देश्य की सामन साध्य प्रक्रिया का विकास हमने देखा । सांसारिक मय से आतुर सांसारिकता का ज्ञान पाते ही सर्व प्रथम माया से अपनी रक्षा की इच्छा करता हुआ जीव उस विद्या में प्रयत्नशील होता है । अपने स्कुल ज्ञान के अनुकूल पहिले वह धारीरिक पुनः साधनारम्भक तत्पश्चात् मामसिक एवं धारिमिक प्रयत्न करता है लेकिन शीघ्र ही उसे ज्ञान हो जाता है कि पण प्रदशक गुरु के विना सब साधन व्यय हैं । और वह गुरु का आश्रय लेता है, परंतु यह अनुभव करने में भी देर नहीं भगती, कि मयबत् कपा बिना इतना सौभाग्यशाली नहीं बना जा सकता कि त्रिलोक वशकारिणी माया से रक्षा हो सके । माया से रक्षित जीव सांसारिक प्रलोभनों से अच्युत घब निकसता है । लेकिन अपने क्षेत्र के एकाधिपति यम का मय उसे निरन्तर चिन्तित किये रहता है । इस प्रकार उसे मय से रक्षा का प्रयत्न करना पड़ता है । यम से रक्षित हो वह मय-बन्धनों का नाश कर उस पार पहुँचने का प्रयत्न करता है और यही प्रयत्न उसे मोक्ष एवं अमयपम का इच्छुक बना देता है । मोक्ष प्राप्त के बाद आवागमन के चक्र से घब कर जीव भगवत प्राप्ति करना चाहता है, ब्रह्म-दर्शन कर उस का ज्ञान प्राप्त करता है और धीरे २ उस की अनुमति में अपने आप को छोड़कर उस से

देसा ऐक्य सम्बन्ध स्थापित करता है जहाँ दोनों के रूप में कोई भेद नहीं रहता। संकर के प्रदूषण की भी यही पुकार है।

### सहायक शक्तियाँ

मानव जीवन का साध्य ब्रह्म से पून लक्ष्य है। जीव का अपने साध्य से परिचय हो जाने पर उस दिशा में प्रगतिशील हो जाना स्वाभाविक ही है। यद्यपि गत प्रकरण में साधनों पर बहुत सा प्रकाश डाल चुका है लेकिन कुछ स्पष्ट धस्यष्ट भी र्ख गये हैं क्योंकि वहाँ साध्य प्रमाण या और साधना उम के अनुकूल। अतः साधनों का स्वतन्त्र अस्तित्त्व ब महत्त्व न स्पष्ट हो सका। महां साधनों का धपना ही विकास क्रम है। वस्तुतः साधन से अधिक उन्हें सहायक शक्ति कहना अधिक उपयुक्त होगा। भगवत् प्राप्ति के दुर्लभ माग पर धाग बढ़ने के लिये धम्यान्व शक्तियों का धाध्य लेना पडता है, यह शक्तियाँ कभी प्रयत्न साध्य होती हैं और कभी धनायास ही उपसर्ध। उन की धनायास उपसर्ध भी सम्भवतः पूव जन्म धर्मित संस्कारों के कारण ही होती हैं। सरकम, सत्संग तथा सतगुरु का धादि त ज्ञान किन्तने बीराहों से होकर जीव को भगवत् रूप प्राप्ति करने लिये प्रयत्नशील जाना पडता है। एकिन धनम्य भक्त की तो धनायास ही धपनी तत्पीनता में ही भगवत् रूप को धनुमूर्ति हा जाती है। अतः इन सब शक्तियों को धर प्राप्ति के साध्य में सहायक शक्ति का नाम देना अधिक युक्ति सपत प्रतीत होता है।

भगवत् रूपा ।

धनुत भगवत् प्राप्ति का एक मात्र साधन है भगवत्



कृपा । मानव के सब सत्कर्म, योग अब तप, ज्ञान और सम्पूर्ण भक्ति भी यदि जीव को भगवत्कृपा का अधिकारी नहीं बना सकती तो सब व्यर्थ है । भगवत् कृपा के लिये आवश्यक है कि कि जीव में ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा हो ऐसी जिज्ञासा जो मृत्यु के अनन्तर भी सब भावों उसी को अपना अधिपति स्वीकार करे, अतः उसकी अनन्त शक्ति के प्रति भयोत्पन्न हो । अप्रत्यक्ष रूप से भय ही उस अनन्तशक्ति के प्रति बड़ा उत्पन्न करता है । बड़ा का आधार है विश्वास अपने पर जिस व्यक्ति को भरोसा हो और उस को अनन्त शक्ति पर जिस विश्वास हो उसी में उपयुक्त रूप से बड़ा उत्पन्न हो सकती है । सच्ची बड़ा एक बार अनन्त शक्ति पर पूर्ण विश्वास पूर्वक की जानी चाहिये फिर तो जीव स्वतः ही पुकार उठता है भय कहूँ राम भरोसा लेग<sup>१</sup> जीव को उस पर भरोसा हो गया और यह ज्ञान भी हो गया, कि वही सब के कार्य करता है ।

‘साहित्य होठ बड़भामु, कृपा करै अपुना कारनु संवार ।’<sup>२</sup>  
 भगवान् दयामु हुआ और भक्त का काम बन गया क्योंकि उसी ने तो कृपा करके ध्रुव और प्रह्लाद का भी उधार किया था, लेकिन यह कृपा तभी हो पाती है जब भगवत् विश्वास से भगवत् प्रेम उत्पन्न हो और प्रेम की यह तड़पन धनीभूत होकर अमायास ही भगवान् को कृपा कर देने पर साधारण कर देती है जिस पर यह कृपा हुई, उस का तीनों लोकों में आदर होता है, वस्तुतः हरि कृपा से ही वह सत्संगति प्राप्त

१ पृ. ३२८, २२ ।

२ पृ. ३३३, ५० ।

होती है जिस से मन मक्ति में स्थिर होता है।<sup>३</sup> इसी से अत्यंत शक्ति मिलती है। सत्संगति ही क्या जीव का कोई भी कार्य भगवत्कृपा बिना सम्पन्न नहीं होता। और 'जब हुए बिनास मिले मुहदेठ, और यह गुरुदेव ही तो भगवान से मिलाने वाला है। इस दृष्टि में साधन साध्य स भी उपयोगी प्रतीत होता है। इस प्रकार जीव का वास्तविक साम्य और साधन भगवत्कृपा की प्राप्ति ही है। इस लिये सब स सशक्त सहायक शक्ति भी भगवत् कृपा को ही माना जा सकता है।

### सत्गुरु

उस के स्वरूप, गुण एवं कार्यों का विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है। यहां बस इतना ही कहना है कि गुरु आबन्वरी न होना चाहिये गुरु भपमाने से पहिले अच्छी तरह पहिचान कर लेनी चाहिये, कि वह सत्गुरु ही हो। ऐसा सत्गुरु जिसने स्वतः ब्रह्म अनुभूत कर लिया है, और इस प्रकार माया निमित्त वह दूसरो का पय प्रदर्शन करे। गुरु के गुण उत्कृष्ट तम मानव के गुण कहे जा सकते हैं। और उस के कार्य की महत्ता की अनुभव करके ही कबीर ने उसे गोविन्द से भी पहिले प्रणाम किया था।

'गुरु गोविन्द दोनों एक, काके सागों पाय।

बसिहारो गुरु आपने, जिन गोविन्द दीघो दिसाए ॥

बस्तुतः विश्व में गोविन्द का प्रतिनिधि सत्गुरु को ही माना

आ सकता है इतना होते हुये भी वह जीव का निरन्तर पथ-  
प्रदर्शन करता रहता है तथा वैयक्तिक साधना के रूप में  
नाम देता है ।

राम पदारथु पाइक कबीरा गांठि न सोलुह ।

मही पहणु नहीं पारबू नहीं गाहकु नहीं मोलु ॥<sup>६</sup>

वह नाम इतनी प्रमूख्य वस्तु है कि संसार के बाजार में  
उसे पहिचानने वाले बहुत ढोबे हो पाइक हैं अतः सम्मान  
कर रखना चाहिये । कि उनकी हरि के नाम विनु किनि  
गति पाइ'<sup>७</sup> एक मात्र यह नाम ही तो माया और मम से जीव  
की रक्षा करता है ।<sup>८</sup> इसी में तस्मीन होकर जीव परमात्मा का  
सहवास प्राप्त करता है । क्योंकि जिन्होंने 'हरि का नाम न  
भेदिआ उर्होनि' तो व्यथ ही जीवन गबाया और न तरकहि  
परहि'<sup>९</sup> क्योंकि 'राम नाम विनु मुक्ति न होई'<sup>१०</sup> जिसने राम  
नाम का रस नहीं पीया, उसकी जिह्वा बेकार है । जिसने उसका  
नाम नहीं सुना उसके कान जल क्यों न गये ।<sup>११</sup> वस्तुतः संसार  
की सम्पूर्ण सम्पत्ति से भी कहीं अधिक मूख्यवान है, 'इहु धनु मेरे  
हरि के नाउ ।'<sup>१२</sup> इसलिये संसार में निर्घन की परिमापा इस  
प्रकार है—

5 श्लोक २३ ।

6 पृ. ६५४ १ ।

7 पृ. ४८२, २५ ।

8 श्लोक ३५ ।

9 पृ. ६५४ १ ।

10 श्लोक ४ ।

11 पृ. ११५७, १ ।

‘कही कधीर निर्धन है सोई ।

बाके हिरद नाम न होई ॥’<sup>12</sup>

अतः इस नाम के स्वरूप का ज्ञान जाना भी कठिन है क्योंकि यदि ‘राम नाम की गति नहीं कसे उठरसि पार ।’<sup>13</sup> और वह गति क्या है ? ‘राम कहन महि मेहु है तासहि एकहु बिचार ।’<sup>14</sup> ताते रटमत्त का तो कबीर ने विरोध ही किया है क्योंकि यह बाह्यादम्बर मात्र ही है— नाम लेने का रहस्य यही है कि भगवान् के उन गुणों में जीव को अपने हृदय को तल्लीन कर देना चाहिये । ऐसा राम नाम जिन वा शक्तियों से बना है ‘ए दुइ अक्षर न विसहि’<sup>15</sup> इस मन्दार मसार में यह दो शब्द ही मन्दार हैं । इसका महत्त्व तो इसमा है कि न केवल नाम लेने वाला मुक्त ही धर्म्य होता है अपितु ‘दिहि निमकी वापुरो पवित्रु होइगो ग्रामु’<sup>16</sup> वह कुल भी साधक हो जाता है जिसमें भगवान् का नाम लेने वाला ‘हरि दामु’ शपन्न हुआ है । नाम स्वी हीरे का व्यापारी ही वा सच्चा व्यापारी है । उसी मनुष्य की देह वा सुन्दर है जिसने नाम को आधार बनाया है क्योंकि ‘नाम बिना जैसे कृद्यज कुरूप’<sup>17</sup> और ऐसी देह म्भिर भी तो नहीं रह सकती क्योंकि ‘जितु घटि राम न उपरि फूटि मरे जनु सोइ । इसी लिये उरने भी तो प्रह्लाद के हट पा दुखिया था ।’<sup>18</sup>

12. पृ. ११४६, ४ ।

14. श्लोक १६० ।

16. श्लोक ११० ।

18. पृ. ३२३, २५ ।

13. पृ. ११००, १ ।

15. श्लोक १७१ ।

17. पृ. ३२२, २५ ।

‘मोकुठ कहा पढ़ावसि धाज्ज बाल,  
मेरी पटीघा मिथि देठ सिगोपाल,  
नहीं छोड़त से बावा राम नामु ।  
मेरो अठर पढ़न सिठ नहीं कामु ॥<sup>19</sup>

संसार की सब पढ़ाई और सब काम नाम लेने ही में तो निहित है क्योंकि उसके बिना जीव का जीवन ही बकार है । यह है नाम का महत्व और स्वरूप । भगवत् प्राप्ति में साधन के रूप में नाम नाम का अनवरत ध्यान ही अप कहलाता है । ‘कबीर सूता किष्ठा बरहि, उठि कि न अपहि मुरारि’<sup>20</sup> सोते हुये जीव को सतक क्रिया है कि जब जब अप करने का समय है तब सोने की क्या आवश्यकता ? क्योंकि इस कर्णिक जीवन में थोड़ी देर बाद ही तो ‘लाम्बे गोड पसारि’ सो जाना है । सांसारिक मोह माया में उसका जीव अभी सुलभ भी न पाया था कि कबीर ने पुनः भस्कारा ।

‘हरि का नामु न अपसि गंधारा ।

किष्ठा सोषहि बारम्बारा ॥<sup>21</sup>

और यह अप मासा फेरना मात्र नहीं है अपितु ‘हरि अपि हिरवे माहि’<sup>22</sup> कहकर उसने भक्त के वास्तविक रूप से परिचित करवा दिया । अनन्त जीवनो तक उसके अप में सीन रहने का सदैव विया है । जब नाम के आन्तरिक उच्चारण की भी आवश्यकता न रहकर केवल स्मरण की भावना रह जाती है तब नाम सिमरण में परिवर्तित हो जाता है ‘कौण्ड जिठ मति

19 पृ ११६४, ४ ।

20 श्लोक १०८ ।

21 पृ ६३५, ७ ।

22. श्लोक १०६ ।

जाऊँगा' और यम प्राणके केशों से लीप ले जायेगा इस  
निये सम्पूर्ण सांसारिक सुखों को छोड़ उन सबसे मूढ 'हरि  
सिंमरन दिन आई' नहीं तो 'नाम सिंमरन पक्षवाहिगा मन'  
सांसारिक विष को छोड़ कर नामामूढ का आस्वादन करने की  
प्रेरणा देते हुए कवीर ने कहा है—

राम मिंमरि राम मिंमरि राम सिंमरि भाई  
राम नाम सिंमरे विनु, सुकते अधिवाई, २३

इसके बिना अधिक भोग तो भवसागर में डूबते ही जायेंगे।  
यह सिंमरन ही तो ऐसा विना लेख का दीया है, जो काम, क्रोध  
आदि विकारों के सम्पूर्ण भग्घकार को बड़ से उखाड़ फकता  
है। मूढ — जिह सिंमरनि तेरी गति होइ।

सो सिंमरनु गुरु कंठ पिरोइ ॥ २४

इसनिये 'जिह सिंमरन लेगी जाउ बसाउ है जीव 'सो सिंमरन  
रू धनविमृ दिउ ॥' नाम सिंमरन को प्राप्त करने का स्वाम भी  
बता दिया है। इह सिंमरनु सतिगुरु ते पाइये' और रात दिन  
उठते बैठने प्रत्येक समय व्यक्ति जो सिंमरन करता है वही  
'हरि सिंमरनु पाइये संजोग' मानव जीवन का उद्देश्य ही भगवत  
सिंमरन है और धनबन्त सिंमरन उसका साधन। सिंमरन का  
भा धर्म, बस्वा तक पहुँच कर जाव की 'अन्तरि सिंम  
साये ॥ यह भगवान में एसी तस्तीनठा है जिसमें ब्याकन  
सिंमरन तो क्या धपमे धाप को भी भुसा देता है। और लभो  
बह लभ ही मुख पाव ॥' क्योंकि उसका सम्पूर्ण धोक तो मिट

23 साक ११०।  
25 पृ ६६०, ६१।  
28 पृ ६१, १।

-1 पृ ११०६ ११।  
-H, 37 पृ ६७१, ६१।  
29 पृ ३४० ४३।

पुके होते हैं। अतः कबीर अपने अनुभव से जोब को विश्वास दिलाता है कि मेरी २ छोड़ कर केवल 'राम रहहु सिब सात'<sup>30</sup> इस प्रकार नाम उसका जप एवं सिमरन तथा उसमें सौ सगाने का महत्व बताया है। अतः यह सौ (तस्मीनता) ही भगवत् भक्ति है अतः उसका स्वरूप देखना भी आवश्यक है।

### भक्ति

कहु कबीर भगति करि पाइया ।

भोले भाइ मिलै रघुगइया ॥<sup>31</sup>

भोलेपन से मरी हुई भक्ति से ही भगवान मिल सकते हैं इसी लिये 'अरम कमल जाके रिदं बसहि वह मनुष्य कभी नहीं डोलता, अपितु 'सर्वत्र मुकु पार्व'<sup>32</sup> इतना ही नहीं, भक्ति इसलिये भी महत्वपूर्ण है क्योंकि सिंगु हरि भक्ति न मुक्ति न होई'<sup>33</sup> और यह भक्ति ही है जो मूम में कस्तूरी बत् जीव में अन्तर्हित ब्रह्म को उद्भासित करती है। इसी कारण तो उस नगर से वह निर्जन स्थान ही भसा है "गम भगति जिह ठाह'<sup>34</sup> क्योंकि भक्ति रहित स्थान तो यम का नगर है यही कारण है कि कबीर को उसे कोसना पडा।

'जिह नर राम भमति नहीं छापी ।

अनमत कत न मुमो अपराधी ॥'<sup>35</sup>

भक्ति न करने वाला अपराधी जन्म पाते ही मर क्यों न गया ? भक्ति के विना प्रत्येक घर बेकार है, अतः उस घर

30 पृ. ११६०, १४।

32 पृ. ८३७ १०।

34 श्लोक १५१।

31 पृ. ३२४, ६।

33 श्लोक ५४।

35 पृ. ३०८, १५।

को घाग लग जानी चाहिये जिह्र नाही हरि माउ"३७ घर का ही क्या कहना ? भक्ति क बिना तो मानव का जीवन ही व्यर्थ है । इसी सिये कबीर न पढ़ने से योग को भला समझा या लेकिन भक्ति पाकर बह उठा, कि वह उसे छोड़ने का तैयार नहीं 'भस्वी न्दित लोगु'३८ अथ भक्ति की युक्ति जाननी आवश्यक है क्योंकि उसके बिना मुक्ति नहीं, और जीव सांसारिक मोह-भाया ही में ही फँसा रह जाता है । उसने शास्त्ररी साधु ज्ञानगवित पण्डित को सब-तारक नहीं जाना, अपितु कोई जीव सब-वार नहीं हो सकता जब तक—'भगति मारदी रिदै न भाइ'३९ कबीर की मारदी भक्ति शास्त्रीय न होकर अनुभूत है उन्होंने इसका विधिवत् शिक्षण न पाया या अपितु कहीं यह सुना होगा कि मारदी भक्ति ही सबतारक है सम्भवतः इसलिये उसका उल्लेख भी कर दिया । लेकिन कबीर को अनुभूत भक्ति के सभी तत्व शास्त्रीय भक्ति में शामिल नहीं । 'मन मारे विभु भक्ति न होइ'४० इसलिये बिरले व्यक्ति ही भक्ति के अधिकारी होते हैं । उसकी प्राप्ति का स्थान है 'अनगुह' और उसका लिए आवश्यक है उसकी कृपा । जयदेव और नामदेव इसके प्रमाण हैं ।

गुरु प्रसादी जै दउ नामा ।

भगति क प्रेमि इनहि है जाना ।<sup>४०</sup>

उस भक्ति में यह भी आवश्यक है कि भक्त 'असविद

३० दशक १२ ।

३१ द १२४, ३ ।

३७ द ३३०, ३३ ।

३७ अक ४२ ।

३९ द ३६, २८ ।



रही न कठहूँ जाउ'<sup>41</sup> उसकी लगन सर्वत्र भगवान में लगी होनी चाहिये, उसका साधन भी उसने बताया— 'काइया मदर मनमा यम' बना सेना चाहिए <sup>42</sup> तभी यह स्थिरता धर सकेगी। भक्ति को सबसे पहली धोर कबी छरें हैं धन्यता की 'सरख तिघागी मनु केवल राम'<sup>43</sup> क्योंकि जिस प्रकार कबी सरसों से न तेम निकसता है धोर न सम ही उसी प्रकार धन्य देवी देवताधी का धाधय सेना ध्यध है। धत एक मात्र दानी ब्रह्म को ही भजना चाहिए। 'धत बाधत केवल राम, धान देव सिठ नाही काम'<sup>44</sup> इसलिये एक ही ब्रह्म से धपनी लग्न लगा सेनी चाहिए, तथा, 'दूसरे मनहि न धाना ना।<sup>45</sup> सर्व धक्ति मान भगवान का मक्त धन्य देवी देवताधों के धर बाता हुआ धोभा नहीं देधा, ऐसे दूसरे में मन लगाने वाले मक्त को धिक्कारधे हुए कबीर कहते हैं—

रे धीम निलज साज तुहि नाही ।  
हरि तजि कत काहू के जाही ॥  
धाको ठाकुर ऊंचा होई,  
धो अनु पर धर बात न सोही ॥<sup>46</sup>

क्योंकि वह 'धमि जनम ताहि को मन। इस धनन्यता के बाध चाहिये पूज धारम-समर्पण धोर उतमें भी 'सीसु काटि करि गोई ॥'<sup>47</sup> यह समर्पण उध पिसी हुई मेंहबी

41 घ. ४८१, २१ ।

43. घ. ३९४, ३ ।

45 घ ३३६ ७४ ।

47 श्लोक २३६ ।

42 घ ३४४, १ ।

44. घ ११६२, २० ।

46 घ ३३०, ३८ ।

बसा होना चाहिये जो पैर में सगने पर उस रग ता दे, लेकिन पर मैं उसक घाट सकण भी धुम कर उसको उपस्थिति को सुषना न द ४८ सार सांसारिक बन्धनों को त्याग कर नेत्र, काम बापी तथा हृदय सनों इन्द्रियों से जीव को अपने आपको उसी में समा दना चाहिए क्योंकि—

‘हम तुम बं धु मद्घा नहीं कोई ।  
तुमाह सुकत नारो हम साई ॥’<sup>४९</sup>

और वह तुमहि छोड़ि जाअर नहीं दूजो<sup>५०</sup> मगवान की पत्नी बनते हुए वह कोई का पति भी तो रहा ।<sup>५१</sup> उसी पूष घातम समपण का हा परिणाम है कबोर इतना भी नहीं जान पाते कि ‘पीष महि जीउ बसे जीष महि बसे कि पीउघा ।<sup>५२</sup> लेकिन इस घातम समपण के माय = मेह के लिये ‘आत्रिक जिउ गनन्य रहै’<sup>५३</sup> एसी तद्वपन की भी आवश्यकता है । इस तद्वपन । जो मगवान में घनवरत ध्यान मगा रहना चाहिए और भक्त जगो में ‘घसपिह रहै न कठहु जाइ’<sup>५४</sup> इसलिये तो कबोर कहता है कि ‘राम न छोड़ीए, तमु धनु जाइ त जाउ ।<sup>५५</sup> वह इस नाम को जो उसकी मस्ति का आधार है किसी भी धर्त पर छोड़ने को तैयार नहीं । इसी लिये उसने हर एक को सदेव निया है कि घाठ जाम घौमठ ‘घरी तु अनिरतत रहै पीउ ।’<sup>५६</sup>

48 स्रक ६४ ।  
50. इ ११५७, २ ।  
52 कोठ ७३६ ।  
54 इ. ४८१, २१ ।  
56 स्रक ६३५ ।

49 इ ४८५, ३२ ।  
51 इ ३७८ २३ ।  
53 स्रक १२४ ।  
55 स्रक १०२ ।

संसार के सभी प्राणियों के माध्यम से भक्त भगवान को ही तो देखता है इस प्रकार कबीर की भक्ति के प्रावण्यक तत्त्व है, धन्यता, पूर्ण आत्म-समर्पण, अनवरत लक्ष्मण और उसमें ही एकाग्रता। एसी प्रेम भक्ति के सहारे ही लोकिक महारों में सिप्ल न होने वाला जीव भव-वार पहुँच सकता है। घुव, प्रह्लाद, जयदेव नाम देव सभी ने तो उमका प्रायय लिया था।<sup>57</sup> इसी लिए तो पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण संसार की निन्द्या के भय को त्याग कर दृढ़ता पूर्वक स्वयं को उसकी भक्ति में समा लिया 'राम खोरा रबि रह अवर खै सब काम'<sup>58</sup> यही है कबीर की प्रमुभूत भक्ति और उसकी रूप रेखा।

### निष्काम कमण्य जीवन

'तिह बड़भाग बसिधो मनि जाके कस्य प्रधान भयानामा।'<sup>59</sup>

मन में कम की प्रधानता पर बिचार करने वाला व्यक्ति ही सौभाग्य घासी है—क्योंकि 'करि करता उत्तरसि पार'<sup>60</sup> काम करने वाला व्यक्ति ही मजसापर से पार उत्तर सकेया, इसलिये कमक्षेत्र से पराड मुक्त मही होना चाहिए। धय ९ कटबा कर मर जाना मसा है पर कबहुँ न छाई सेत'<sup>61</sup>। जीवन समर्थ है। सत पत्तायन के विरोधी से पतः उम्होने दृढ़ता पूर्वक सांसारिक समस्याओं का मुकाबला करने का क्रियारमक संवेदा धपने जीवन के माध्यम से दिया है उनका व्यक्तित्व और जीवन इस बात का खसमन्ठ प्रमाण है।

57 पृ. ३३०, ३६।

58. श्लोक २३६।

59 पृ. ३३६, ७४।

60 पृ. २७१, १०।

61 पृ. ११०५, ६।

संसार समर से न मागने ब ले को ही उन्होंने 'सूरत धारत नाम'<sup>62</sup> सूत्र बताया है। कबीर, नामदेव और विमोचन की बातचीत को प्रस्तुत करते हुए इसी भाष को पुष्ट करते हैं। विमोचन के यह कहने पर कि इस 'छीपहु छाइये'<sup>63</sup> में ही नाम देव तू क्यों जीवन गवां रहा है ? नामदेव ने उत्तर दिया था—

'नामा कहै विमोचन मुखसे रामु समाधि,  
हाथ पाठ करि कामु समु चीतु निरजनाधि'<sup>64</sup>

ब्रह्म को भगवान में मगते हुए भी उसमें हाथों से काय नहीं रोका था कबीर ने भी कहा है 'हम धरि सूत तनहिं निठ' ले कन 'गोविन्दु रिदे हमारे'<sup>65</sup> इस प्रकार निष्कमप्यता का उन्होंने क्रियात्मक विरोध कर उसे भगवत् प्राप्ति में महायज्ञ बनाया है। अतः जीव को कम ही नहीं संतुष्ट करने चाहिए नहीं तो कर्मभोग का व्याज ही बढ़ता जायेगा, 'मुहनु करि करि लीजै रे मन'<sup>66</sup> संसृष्टों की पहिचान का साधन भा कबीरा ने बता दिया है कि, 'सत की पैस न छोड़िये।'<sup>67</sup> जीव ने तो केवल उस माग पर धमना है इसी लिए तो 'जिह मारगि पबित गए पाछे परी बहीर,'<sup>68</sup> उनके माग पर ही तो समाज की मीढ़ बन पड़ी, अतः जीव को संतुष्ट करते हुए जीवन सयप में जूझत रहना चाहिए।

संस्कृतों के साथ २ सदयुक्तों का भी महत्व बताया है। अहा दुष्टम और दुगु न अपरोधक सक्ति के रूप में जीव को

62. पृ. ३४२, ३४।

64. अंश ०१३।

66. पृ. ४०१ १६।

67. श्लोक १३०।

63. श्लोक २७२।

65. पृ. ४५२, २६।

68. श्लोक १६५।

उसके उद्देश्य तक पहुँचने में रुकावट डालते हैं वहाँ सत्कर्म और सद्गुण मानव को प्राप्ति-मुक्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं। फलवान वृक्षों की तरह परोपकारी व बानी होना वहाँ जीव को मज्ज और उदार बनाता है वहाँ जन्त भी कर देता है।<sup>69</sup> वहाँ ज्ञान में वर्म है वहाँ मूठ में पाप है तथा 'जहाँ सोमू वह कामु है जहाँ विमा वह धर्मापि । क्षमाकारी को तो मगवस्तुम्य ही घटाया है । इस प्रकार मक्ति के साथ २ सद्गुण और सत्कर्म पण्ड निष्काम कामव्य जीवन भी जीव को उसके साथ तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होता है ।

### ज्ञान

ज्ञान के घाटम्बरों में पड़े हुए पण्डे-मण्डितों बाम्हन ब्राह्मणों तथा मुस्लिम मीमदियों का कबीर ने विरोध प्रकट किया है। लेकिन इसका वह मतलब नहीं कि अपढ़ कबीर ने ज्ञान के महत्व को स्वीकार न किया हो उमने स्पष्ट ही कहा है 'वह जानु तह धरमु है'<sup>71</sup> वस्तुतः विवेक एवं विचार के बिना पुस्तकी ज्ञान का उन्होंने विरोध किया। लेकिन विवेक का तो उन्होंने इतना महत्व स्वीकार किया है कि उसे अपना गुरु तक कहने में नहीं चूके<sup>72</sup>। वास्तविक ज्ञान ता वही है जो धर्म-करण में प्रह्व को उब मासित कर उसकी पहिचान करवा दे<sup>73</sup>। मक्ति मार्गी कबीर का यद्यपि बिशिष्ट साधन नाम है

69 श्लोक २३० ।

71 श्लोक १५५ ।

73 पृ. ३४०, ८ ।

70 श्लोक १५५ ।

72. पृ. ७६३, ५ ।

लेकिन इस बात को भुला नहीं सके कि बिना विचार किये नाम का भी कोई महत्व नहीं, धन्यथा वह 'छर धन्यम भारा' ही बना रह जायेगा।<sup>74</sup> धन्तर ज्ञान ही वह धनूस्य धन है जिसे पाकर जीव वास्तव में धनी बनता है<sup>75</sup> क्योंकि उसका 'निसना घः माइघा भ्रमु चूका।'<sup>76</sup> इस प्रकार—

‘चीनठ चितु निरजनं लाइघा ।

कहु कबीर घी धनमउ पाइया ॥’<sup>77</sup>

वस्तुतः कबीर का ज्ञान पुस्तकी ज्ञान न होकर स्वतः उद्भूत धन्त-करण का ज्ञान था। ज्ञान के प्राप्ति के बिना कबीर की भक्ति संशक्त नहीं प्रचलित, घाडम्बर पूष भक्ति की प्रतिक्रिया में यह उसने धनुभव किया था। इसी लिये वही उसने अपनी भक्ति को निष्काम कर्ममय जीवन से प्रबल मान व संवरण दील दैनिक जीवन का घग बताया था। वही स्थायी भी किया था। उसे ज्ञान के सम्बल से संशक्त एवं भक्ति की प्रधानता होते हुए भी उसने ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समुचित समन्वय कर वह त्रिवेणी प्रवाहित की जो युग-युगान्तर तक जीवन का धन्य स्रोत बहामे हुए है। घत कबीर के साध्य प्राप्ति में सहायक ज्ञान का महत्व भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि ज्ञान ही ठा वह मूय है जो भक्ति के पथ को प्रालोकित करता है।

### योग

‘छरबद एकु धन्य डार धासा पुहप पत्र रस मरीघा ।

इह धमिठ की बाडी है रे तिनि हरि पुर करीघा ॥

जानी जानी रे राजा राम की कहानी,  
घन्तरिज्योति राम परगासा गुर मुक्ति विरखै जानी ।<sup>78</sup>

सम्भवतः कबीर अपने प्राग्मिक जीवन में योगी रहे थे। अथवा उनका योगियों से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था, कि वे न केवल यौगिक शब्दावली अपितु यौगिक क्रियाओं से भी बहुतायत में परिचित थे। उनकी वाणी इस बात का प्रमाण है। 'युञ्ज' (जोड़ना) से योग शब्द का व्युत्पत्ति ही जोड़ना है, आत्मा को परमात्मा से। इसका अर्थसाध्य साधन है शारीरिक क्रियाओं द्वारा ब्रह्मात् इन्द्रियों एवं मन को बंध में करना ही हठ योग का उद्देश्य होता है क्योंकि 'मनु जाठे मनु जोतिभा ।'<sup>79</sup> इतना ही नहीं उस पवित्र मन के पीछे तो स्वतः भगवान भी धूमन लगते हैं।<sup>80</sup> और ऐसे ही पवित्र मन ब्रह्मा 'जोड़ ते सीर' जीव से शिव में परिणत हो जाता है।<sup>81</sup> ब्रह्म शरीर को उसमें समरूप किया है तभी उसे "राजा राम की कहानी,"<sup>82</sup> का पता लग गया और यह भी ज्ञात हो गया कि यह शरीर ऐसा है 'जा महि ज्योति करे परगास'<sup>83</sup> सब प्राटक से उसमें संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया ब्रह्मरूप में कुहसिनी की वाणी द्वारा उसमें ब्रह्मदर्शन करने का प्रयत्न किया है।<sup>84</sup> नव द्वारों की बुद्धियों को रोकने से ही यह सम्भव है। कोई विरता ही ऐसा है जो वचन द्वार तक पहुँच सके और अमहत् माद को भवण कर

78. पृ. २७२, ६।

80. दशोक ३५।

82. पृ. २७०, ६।

84. पृ. ३४१, २४।

79. पृ. ११०६, २।

81. पृ. ३४४, १६।

83. पृ. ११६२, १८।

ब्रह्म रसामृत पान करता हुआ उसी के ध्यान में तल्लीन हो जाये।<sup>85</sup> पन्थक में अनुसूत ब्रह्म के कारण हो उसकी द्विविधा का नाश हो जाता है इस प्रकार जब 'उगवै सूर' तथा भगताार ग्रहिनिसि नाजं धनहृद तूर' तब जीव ने 'वेसिष्ठा सिहु शोक का पीउ'।<sup>86</sup> जिस याग का प्राइम्बर समाज को विघ्नित कर सकता था उसका कवीर ने दृढ़ विराय किया। लेकिन वास्तविक योग देह की पुष्टि और मन की एकाग्रता के माध्यम से ब्रह्म प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस बात को उसने स्वीकार किया है। इन्द्रियो और मन को नियन्त्रित किये बिना धनन्य और धनवरतमन्ति हो भी कैसे सकती है। पतः साध्य प्राप्ति में कवीर को योग का विशेष सहायग स्वीकार है। हाँ यह स्मरण रहे कि उसन इष्टदायिनी युग्ह पारीरिक साधनाओं का विरोध कर सहज-याग का महत्त्व स्थापित किया है। सहज' उ तात्पर्य हा उस योग का है जो धरने धाप में हा दुसाध्य साध्य न धन कर दैनिक जीवन का क्रियात्मक धग बन सक जिसके लिये निबृत्ति मार्गी एव निष्कमध्य जीवन व्यतीत करना आवश्यक नहीं अपितु प्रवृत्ति मार्गी होते हुए भी जो सहज ही जीव को उसक साध्य को और धरसर करे इस सहज में लीन हान पर ही जीव का प्रम नष्ट होता है तथा काःपपूण होता है।<sup>87</sup> दस सहज क कारण ही मरम जीवम को सका नासी।<sup>88</sup> परिणाम स्वरूप थोरो =

85 पृ. ३३४, ३३।

86 पृ. ३४४, १३।

८७ पृ. १३५२, १।

8८ पृ. ३४४, १३।

87 पृ. ११६४, ६।



उसका 'मनुष्या सहस्रि समाना ।'<sup>89</sup> इस प्रकार सहज योग साध्य प्राप्ति का उपयुक्त साधन है ।

### पवित्र मन

मन जीते जगु जीतिघा'<sup>90</sup> मन का महत्त्व तो इसी से स्पष्ट है । अतः साध्य तक पहुँचने में पवित्र मन का विशेष सहयोग है । मन को पवित्र करने के लिए उसे नियन्त्रण में लाना आवश्यक है अतः

'कूटम सोइ जो मन को कूटै ।

मम कूटे तउ जम है छूटै ।'<sup>91</sup>

पवित्र मन न केवल यम से रखा करवाता है अपितु भगवत्प्राप्ति भी करवाता है । और जब 'मनु मिमसु मद्मया, तो पाछे सागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर ॥'<sup>92</sup> पवित्र मन के पोछे तो भगवान स्वतः चक्कर काटता फिरता है क्योंकि पवित्र मन तो स्वतः ही भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

### सत्संगति

मन को पवित्र रखने के लिए सत्संगति आवश्यक है, 'सत संगति रामु रिबे भसाई ।'<sup>93</sup> न केवल इतना, उसी से तो 'भुक्ति पदारथु पाइए'<sup>94</sup> और जीव का आवागमन के चक्र से मुक्तकाय होता है यह सत्संगति ही पहिले माया से रखा कट्टी

89 पृ. ११२५, ४ ।

91 पृ. ८०२, १० ।

94. पृ. ६६१, १ ।

90. पृ. ११०३, २ ।

92. पद्योक्त ४५ ।

94. पद्योक्त २३१ ।

‘सति सगति मिली विवेक बुद्धि होई,  
पारसु परसि सोहा कंचनु सोई।’<sup>९६</sup>

उसके बिना तो यह ससार जमतो हुई मट्टी है जिसमें  
फुलसता हुआ जोब न कमी पान्ति ही पा सकता है और  
न ही मक्कार पहुँच सकता है। <sup>९७</sup> जिस प्रकार कोई भी मदी  
गंगा में मिल कर गंगा ही बन जाती है उसी प्रकार—

‘सन्तन सगि कबीरा विगरइमो,  
सो कबीर रामे होइ निवरइमो।’<sup>९७</sup>

सन्त समागम से कबीर तो राम ही हो गया था।  
मत्स्य रि हरि ने भी तो कहा है “सत्संगति कयय कि क करोति  
पुसाम्” जीव का जीवन सा कार्य है जो सत्संगति से सिद्ध नहीं  
होता। प्रसः सत्संगति के महत्व को समझते हुए कबीर ने  
कहा है।

‘कबीर एक पड़ी, प्राची घडो, प्राची हूँ ते प्राप,  
मगतन सेती योसटे जो कीनै सो जाम।’<sup>९८</sup>

दाग मर की मत्संगति भी जीवन को सफल बना  
देती है। इसी से तो ब्रह्ममय वातावरण बनता है सत्पुरुष की  
प्राप्ति होती है—नाम का प्राधार मिसता है सत्कर्म तथा सद्-  
गुरुओं के माध्यम से जीवन का समुचित विकास होता है और  
जीव ब्रह्म की ओर बढ़ता रहता है।

85 पृ. ४८०, २०।

97 पृ. ११५८, ५।

99 पृ. ३३५, ५०।

96. पृ. ११०५, १०।

98. श्लोक २३२।

## हरि सेवा

‘भूटनु हरि की सेवा’ । मय यन्त्रों से भूटन का उत्कृष्ट साधन है हरि की सेवा । क्योंकि ‘ओ सुभु प्रभु गोविन्द की सेवा, सो सुभु राबि न सहिए’<sup>100</sup> सम्भवतः इसा लिए—

‘इस देहि कउ सिमरेइ देव ।

सो देहि भजु हरि की सेवा ॥’<sup>101</sup>

देवता भी तो हरि की सेवा करने के लिये ही उस देह को प्राप्ति करते हैं । वस्तुतः ‘मानस जन्म का एहि साहु’<sup>102</sup> मानव जीवन का यही तो उद्देश्य है । इस प्रकार मानव देह यह जीवन हरि की सेवा के माध्यम से भगवत्प्राप्ति में विशेष सहायक है । जीव का आत्म विद्वान् अपने अन्तःकरण में ब्रह्मानुभूति तथा उसके अनूक्त आचरण ऐसी प्रबल आध्यात्मिक शक्ति है जो अनायास ही जीव को ब्रह्मोद्भूत बना देती है । अपनी आत्मा की पुकार का अनुकरण और कुछ नहीं, केवल ब्रह्म की आज्ञा व इच्छा का ही पालन मात्र है । क्योंकि आत्मा की पुकार के विरुद्ध कुछ भी करना भगवान् से दूर जाना है परिणाम स्वयम् अपनी आत्मा की पुकार का जीवन में क्रियात्मक अनुकरण भगवत् प्राप्ति में मानव का सहायक बनता है ।

इस सब के लिए भगवत्कृपा की आवश्यकता है, क्योंकि भगवत्प्राप्ति के सम्पूर्ण साधनों में यह महत्वपूर्ण प्रथम तथा अन्तिम साधन है भगवत्कृपा के शेष सब साधन तो औपधागिक

मात्र है, यदि वे भगवत्कृपा प्राप्त करने में सहायक नहीं हो सकते, तो इनका कोई मूल्य नहीं। साधनों से प्राणत्व का संचार करने वाली यह भगवत्कृपा है लेकिन यह किसी सौभाग्यवाली को प्राप्त होती है इसी लिए अग्र्यान्ध (धर्मों पर) कहा है—

‘सारिण पर तो मिले जो बड़ भागो रे ।’<sup>102</sup>

और जिस पर भगवत्कृपा होती है वही तो सौभाग्यवाली है।

संक्षेपतः पूब जन्म के अज्ञित पुण्यों के कारण जीव उस सत्कारों को प्राप्त करता है जिससे वह सत्कर्म और सद्गुण परक वातावरण में पनपना प्रारम्भ होता है। ऐसे ही समय सत्संगति से उसे कहीं सद्गुरु मिल जाता है जो नाम देकर जीव को धनन्य व धनवरत भक्ति में मग्न करता है। जीवन भर उसका पय प्रदधान करता हुआ उसे निष्काम कमण्य जीवन तथा सत्कर्म करने को प्रेरणा देता रहता है इसी से उसका अन्तमम पवित्र हा आत्मा की पुकार का अनुसरण करता रहता है। एसा जीव हो कभी सौभाग्य से भगवत्कृपा को प्राप्त करता है। और भगवत्कृपा के होते ही जीव का व्यक्तित्व परमाण्व में तिरोहित हा जाता है। यह है भक्त के जीवन मय के विशिष्ट पय सिद्ध।



## अवरोधक शक्तियाँ

मानव जीवन सचय है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म का सीमाश्लेष। साध्य का ज्ञान होने पर साधक साधनों की सहायता से प्राप्त करता है लेकिन बर्तकाकीय मान के दुर्बल प्रवेष्टों को भ्रम कर, सब सागर की उतास तरंगों के चपेटों का अनुमान न कर। सम्भवतः इसी लिए कि मानव शुद्ध, प्रसन्नता और उन्नति चाहता है, अतः उसकी कल्पनाएँ सुसह आशाओं के सुन्दर प्रासादों का ही निर्माण कर पाती हैं, असध्य दुर्गम बम-कण्डों की नहीं। समुद्राभिमुखी प्रत्येक पहाड़ी ऋतु को न जाने कितनी चट्टानों को बहा देना पड़ता है न जाने कितनी पर्वत श्रृंखलाओं से टकरकर डेली पड़ती है तब भी असंख्य ऋतुओं को रेगिस्तान धारमसात् कर लेता है और उपयुक्त सम्बन्ध पाने वाले कुछ षोडश से ही समुद्र तक पहुँच पाते हैं—यही मानव की कहानी है। ठीक ऐसा ही उसके जीवन का भी मग है। भगवान् ने सीमा रखाई है, उसमें सेवना जो है। इसीलिये अपने और जीव में एक सार्दरब दो है जिसे भरने में भी जीव प्रयत्नशील रहता है। लेकिन वह ऐसा होने देना नहीं चाहता, क्योंकि इस से सेम समाप्त हो जायेगा, इसीलिये उसने संसार की प्रबलतम शक्ति 'माया' को भेजा उस माया ने जीव और प्राणी मात्र की ठो बिसात ही क्या—

‘जोड़ ससमु है बाइया,  
घोर पूति बापु सिसाइया’ ।

उसने न केवल ‘ब्रह्मा विसनु महोदेव छलिया’<sup>१</sup> अपितु देवताओं पर भी अपना प्रभाव जमाया, देवताओं की तो बात ही क्या उनके भी अविपति इन्द्र को गौतम पत्नी पहिल्या पर मोहित होते हुए देखो और इससे भी बढ़ कर स्वतः ब्रह्मा को भी अपनी पुत्री के पोछे मापते देखा, यह सारा ससार तो उसी की ठग विद्या का प्रसार मात्र है और ‘इह अपनी’ ऐसी है कि ‘ससमु मरे तज न रोबे’ क्योंकि ‘इस रत्नबारा धररो होवै’ यह तो ऐसी सृष्टायमी अगत पिमारी है जो ‘सपले जिअ अन्त की मारी है’<sup>२</sup> सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहित करने वाली यह ‘नमनी मुघटा गहिओ,’ समर की उस पत्नी की तरह धाकधक है जिसके बीच में तो रुई है पर बाह्य सौन्दर्य से उसने तोते को मोहित कर लिया है। सपिओ, हाकिनी, बोरटी आदि न जाने उसके कितने बिहृत रूप बुद्धिमानों ने देखे, सुने और अनुभव किए लेकिन फिर भी उसके अज्ञान से न अब सब ‘माइया के बोधे, देखने ही तो ‘असमहि मीन, दीपक पतंग, काम कुजर पत्नी मृग, घोर धीय अति सभी को देखिये, इतना ही नहीं ‘सागर इन्द्र बरतेब’ भी तो माइया के छेदे ही तो हैं’<sup>३</sup> योमियों के यहाँ साया जीव की सास बन गई है।<sup>४</sup> जानो, ध्यानियों को अपने अज्ञान

१ पृ ११६५, ३।

३ पृ. ८०१, ६।

५ पृ ११६० १३।

२ पृ ४८०, १६।

४ पृ. ३३५, ५७।

६ पृ ४८२, २५।

के अधकार में ऐसा सपेटा है कि उन्हें 'सत्य' का कमी ज्ञान ही नहीं होने दिया ।<sup>7</sup> और वह इन्द्रिय-सुख को ही वास्तविक सुख-सामक बँटते हैं । इसके नैव ज्ञान-मुनि पाके प्राणी सुन्दरि कादशा लेकिन 'एक न वाकसि मादशा ।'<sup>8</sup> इसलिये जीव को मरक किया-है कि, ज्ञानमें लिप्त रह कर 'कर्मों बिना जन्म-गतादशा'<sup>9</sup> यह माया ही है जो जीव को ज्ञान रहित करके, 'कनिक का,मिमि मागि' घना,देगी है ।<sup>10</sup> यह कर्तव्य और काश्मिनी ही तो संसार के सम्पूर्ण, भाकपण, सुवगुण तथा दुष्कर्मों के उत्पादक हैं । इन्हीं से काम, क्रोध और मोम उत्पन्न होता है, जिनके भ्रम में फँस कर मानव अपना धर्मोप्य जीवन गंवा बैठता है ।<sup>11</sup> कौनसा एसा धवगुण या दुष्कर्म ही जो माया नहीं करवा, वेती ? कौनसा ऐसा प्राणी व स्वयं है, जो इससे प्रभावित नहीं, प्राणी मात्र के गले में उनमें 'लोक' और पीरों में ऐसी बेड़ी जाम रक्खो है कि वह योनि भ्रमण के चक्र से कभी निकल ही नहीं पाता । और जगत विधारी के चक्र में पड़े हुए को मगजत्प्रेम की सुख ही कहा । इसीलिये मायाकी कमी सुखी, नहीं रह पाता ।<sup>12</sup> मय पार पढ़ने के लिये इस माया से छूटना आवश्यक है, लेकिन 'विनु बिरायु न भूँसि माया'<sup>13</sup> पय प्रदर्शक गुरु की कृपा से जीव उसके आस से बच सकता है, धनहृद सुनने वाले योगियों के डर स बहुत दूर भागने लगी,<sup>14</sup> संतो न माया मटनी को मय कर उसका सार ही निकाल देता<sup>15</sup> और स्वत

7 पृ ६१, १।

8 पृ ४८२, २०।

11 पृ ३२५, ८।

13 पृ ३३४, ५१।

8 ७६३ ४।

10 पृ ११०६, ११।

12 पृ ३३६, ३४।

14 पृ ३३७ १८।

मासतृ, खाइमा' तथा ससार बेबाच 'आदि पीए' । इस प्रकार  
 सारे ससार को चुगने वाली 'भारती माइमा' से एक बबीर  
 न मुस' १० जिसन 'माइमा' के भ्रम को ही समाप्त कर दिया है,  
 वल्कि गुरुके डर के मार बभारी मामा न बबीर को ही प्रथम  
 किया । ११

मायाके प्रेमैल धन्त्र है कबल घोर कामिनो । कर्षन  
 यका शोध कर देने वाली बहु घने रोजि है जिमके सौम में  
 जीव ससार का प्रत्येक कुकर्म करने की तैयार रहता है ।  
 उससे उत्पन्न घेहंकार मानव को दानव बनाने में पोड़ा भी  
 बिलम्ब नहीं करता लेकिन यह स्र भूमना चाहिए कि रावण  
 की मुषण लका को जसने में कितनी देर लगी था १२ यही नहीं  
 ससार की सम्पूर्ण सम्पत्ति कितनी बेस्वियर १३ भन मरबर है  
 घोर जाते समय 'आसी हाब 'हसु इकेया जाइ' १४ घोर 'मुरखु  
 रावनु किष्ठा ले गइया' क्योंकि यहाँ तो प्राणी मात्र ने ही 'अग्नि  
 प्राबनु नागे जाना' है । १५ सांसारिक मन्बन्धों की सत्यता में  
 कामिनो मोह को वर्णन किया गया है, जीब तो क्या चहता तैक  
 का बिबलित कर देने वाली यह स्त्री का कामिनी रूप हा है ।  
 जिस सतों न घोर बिनेपत कबीर ने भर पेट कासा है  
 क्योंकि यही सब दुगुनों की गान है । जीब प्रेमै भी ता वा  
 से नहीं किया जा सकता । कामिनी १६ प्रेमै भेनैवैत्र भी नहीं

१० सा २०१	११	१६ अ ३२२, ४ ।
१७ अ ४५२, २१ ।	१८ अ ४०३, ६ ।	
१९ अ २२२५, ८ ।		



हो सकता। क्योंकि भगवान को तो अनन्य भक्त को आवश्यकता है न।

‘नारिभंसावै लोम गुण, जो नर पास होए।

भक्ति, भुक्ति निज ध्यान में, पीठ सके नहीं कोए।

धीर मानव जीवन में क्षेप रह ही क्या जाता है।

माया, कंचन और कामिनी के आकर्षण से मन को विकृत कर

देती है। विकृत मन इन्द्रियों पर नियंत्रण न रख उन्हें विषय

गामी बनाता है इसका प्रधान आधार विषय और वासना ही

है। अतः उनका विदलेपण ही इस विषय पर समुचित प्रकाश

डाल सकेगा।

विषय—

‘विशिष्या भजह सुरति सुख भासा।’<sup>20</sup>

जोब सांसारिक प्राप्ति है और उसे सांसारिक विषयों

में ही सुख की भासा है तो कैसे होइ है राजा राम निवास’

सर्वक जीब भी धनायास हो वासनाओं का चिन्कार हो जाता

है। वासनाये मन की ऐसा पापी बनाती जाती है कि वह—

‘हरि का सिमरनु छाठि कै भहोई राखे नादि,

तो भगहि होइके भीतर भार सहै मनधारि।’<sup>21</sup>

‘इतना ही नहीं जब सग रसुख भग नहीं मेहु’<sup>22</sup> विषय

रस के हेतु ‘हुए भगवत्प्रेम कैसा। इसी लिये तो कबीर

ने माया और भक्ति-दोनों पक्षियों को एक साथ अरन्ध में रखने

का दुस्साहस न किया था—और भक्ति को अपने से पहिले

20 पृ ३३०, ३६।

21. श्लोक । १०८

22. पृ ३२८, २३।

माया की तिमोत्रमि ही थी ।<sup>23</sup> देव काम निरपेक्ष कबीर का अनुग्रह मत्प कितना महान है हर्षे यह म मूस जाना चाहिये । धीरे धीरे जोबन वासना का रसाग करदे 'मो-मनी-इन्द्र को रंक'<sup>24</sup> मत्पु से हरमे वासे जीव को कबीरने धीरे सतकं किया—  
अवृत्त कबोर छोडि बिसिमा रस इतु-संयति निहचर-मरणा ।<sup>25</sup>

### इन्द्रियां—

विषयों के उपभोग का माधम हैं, इन्द्रियां । जब-तक 'इम पर नियन्त्रण न हो, तब तक बीव सत्कम में नहीं लग सकता—

पंच पहरुमा-दर महि रहत तिम्ह का महीं पति धारा ।<sup>26</sup>

इनका विश्वास हो भी कैसे जब वासना-सिप्त देह इनका धामय स्वयं है, अतः ये पांच इन्द्रियां धरीर के पहरेदार न होकर माया-के पांच दूतों का कार्य करती हैं ।<sup>27</sup> मूयकत् चयम ये हो-देह की सपालिका पतिव है, अतः इन्हें पशु-में करना आवश्यक है, अन्यथा विषकत्-यह-देह-में स्थित कर-बसे का ही माया कर-देगी ।<sup>28</sup> इन 'पंच-धोर' को पकड़ कर जब नाम-जप में लगा दिया जायेगा तभी-ही मुक्ति की प्राप्ति हो पड़ेगी ।<sup>29</sup> धपवा बीव जब इनके प्रभावित न होगा-तभी

23. पृ ४८३, ३२ ।

25. पृ ६१, १ ।

27 पृ ३३१, ४० ।

29 पृ ३४४, ३ । Ram Krishna 'Passions can't be eradicated, there can't be sublimated or educated.'

24 छोक १६६ ।

26, पृ ३३२, ६३ ।

28. पृ ३४४, ४ ।

उसका धारणात्मक जाग्रत होगा और तबही वह नहि परम  
पद पुरे।<sup>30</sup>

मन  
मनु जीते जगु जीतिघा।<sup>31</sup>

मध्यकामीय सन्तों में से काम्तिहत्या कबीर ने ऐसा  
धनुमूठ सूत्र बन-समाज को दिया, जिसे सम्मथत बनता तो  
न घपना सकी लेकिन जिस किस्ती भी बिरले ने घपनाया,  
वही महान् हो गया। आत्माह के सोद्रीछाने में झाडा सोलने  
वाले कि 'मनि जीते जगु जीति' रूप में इसे घपनाया और  
वह गुरु नामक बन गया। कितना महान है यह सत्य। यह  
मन है कैसा ? 'इस मन कउ रूप न देखिया, जाई और रूप  
रेखा हो भी कैसे, सकती है, जब कि 'इस मन कउ नहीं  
भावम भासा।' इसीलिए तो समक, समन्दन भी इसे न पहि  
जासुं, सके।

यह मन प्रति अचक्षु है, उसो विश्वाधी में उड़ने वाला  
पक्षी मूढ़या<sup>32</sup> और बिरल बड़ेरो बाला पंखी को घट  
घब चाहे जहाँ जूना आये। इसीलिए ता हाथी की तरह  
मूला मन का सुकुरा मुकति दुघ रा' में प्रवेश कैसे हो यह  
पेन की मति संशक्त एव सबस भी है। संशक्त होते हुए  
भी यह बोरी करता है और 'दह गूह को मूट के  
जाता है।' अथह-मन ही जब सघार में सिप्त रहता है

30. अथह ११।	31 पृ ११ ३, ७।
32 पृ १४०१, २८।	33 ४ ३३, ३६।
34. अथह २६।	35 ४ ३३७ ६४।
36. अथह ३८।	37 ४ ११६३, ८।

तो वन दिन दूर नहीं अब ऐसे व्यक्ति के द्वार पर 'अमदीया  
 दामा माई ।'<sup>38</sup> इसलिए मन की खानसा को दूर कर उममें  
 स्थिरता आनी पड़गी । और एक मन को मारने से ही सब  
 दुर्गुण अपने आप मष्ट हो जायेंगे । 'यारी एक सजि जाइ घनै'  
 परत धाड्यवरी स'धुंयों को संतक किया है कि मिर को न मू ड  
 बरे कमुपित मन को मुड़ों (परिवर्त करो) और योगियों को  
 भी बजा है 'क'न साइ अठ मन केठ कूट' क्योंकि गारीरिक  
 सौपनों से मंहीं अपितु मन को नियन्त्रण में कर उसके विकार-  
 पुड़ाने से ही जोय यम से कूटे<sup>39</sup> और विषयों से बचने पर ही<sup>40</sup>  
 तो 'राम नाम विष नागी'<sup>41</sup> 'क्योंकि' 'मन मारे विनु भगति न'  
 हाइ'<sup>42</sup> और भक्ति विना 'मुक्ति कहाई' निमात्र पढ़ने वाले को  
 नहीं मन से बहने वाले को ही प्रसमी मुल्या बताया है<sup>43</sup> और  
 इन प्रकार मन से बहकर जिनमे 'मनु साध सिदि होइ  
 पचात जिसने मन को नियंत्रित कर लिया उसी ने सब  
 सिद्धियां प्राप्त कर ली है और यह तिय मन ही तो 'बहुमनु  
 तक्ति इहु मनु मीऊ' शिव और शक्ति के समान सशक्त  
 है और जिनमे ऐसे मन को प्राप्त कर लिया 'तठ तीगि साका  
 को बात कहै'<sup>44</sup> यह देव कर हो कबीर ने इस सब का निषोद्धम  
 पानो बाणो में प्रकटया या मनु-बोत-जगु जीतिघा'<sup>45</sup>

38 इ. २८७ ।

40 इ. ८७० १० ।

42 इ. ३-३, ७८ ।

44 प. ३४३ ३० ।

45 प. ११०३, २ ।

39 इ. ३४१, २१ ।

41 इ. ३३२, ४६ ।

43 इ. ११२६, ११ ।

45. प. ३४२, ३३ ।

### ग्रहकार

‘मेरी मेरी करते जलमु गइया’<sup>47</sup> ग्रहकार की कहाणी व इतनी ही है लेकिन इतने में भी कुछ बाकी नहीं रह जाता और सारा जीवन समाप्त हो जाता है। जिसे ‘कुस की ध्यान’ का धमक है उसे शीघ्र ही यमराज मर्यादा से लाता है।<sup>48</sup> जिसे सुन्दर बेह का प्रतिमान है उसे कबीर ने ‘माम सपेटे हाड़’ कह कर सतक किया है।<sup>49</sup> और ‘कनक मनिनी महासुन्दरी पेशि पेशि सधु धानि’<sup>50</sup> उस प्रकार ओहकार का चिह्न हुआ है उसे सुवर्ण सका के मासिक वन की कुवसा से परिष्कृत करवाया है यह ग्रहकार ही है जो विकसित प्रतिभा को भी विकृत प्रतिभा में परिणत करता है और शीघ्र ही मामक को बिनाश के गर्त में पहुँचा देता है। अस्तुतः इस ग्रहकार की उत्पादिका माया ही है जिसने हमें धम जपान कर दिया है<sup>51</sup> और उस भ्रम के कारण मानव गर्ब करता है ‘रावन हु ते भविक छपपति खिन में गये बिसात’<sup>52</sup> इसीलिए कबीर ने कहा है ‘कहा मर बसि बोरी बात। इस ग्रह से ही ‘मामक, झूठा बिकार हायव’ आदि सम्पूर्ण दुर्गुणों के साथसाथ विवेक एवं ज्ञान नष्ट हो जाता है क्योंकि ‘ग्रह बुद्धि भग बारिघो रे’ इस माया के भ्रम में जिसका मेरी मेरी करते ‘जग्य गइयो वह

7 पृ ४०२, १२।

9 खंड ३०।

1 पृ ८२०, २।

3 पृ ४०६, १२।

48. खंड ११६।

50 पृ ११०४ ५।

52. पृ १०५१, १।

अज्ञानी ग्रहकारी जीव विनमहि विनसि जाइ ।<sup>54</sup> अभिमानी को ठुके लड़े उस बांस की तरह बताया, जो पार्श्वबर्षर्ती चन्दन की सुगन्ध को ग्रहण नहीं करता ।<sup>55</sup> इसके लिये उपयुक्त साधन भी बताया है । 'काम करत बर्य ग्रहमेव'<sup>56</sup> और न केवल 'सुखि मन का अभिमान' पक्ष के ऐसे रोड़े बनो, जो पयिक को चुमे, अपितु इतने मत्त भी बनो 'जिउ धरनि महि सेह,<sup>57</sup> और महत्त समर्पण के लिए तो इस ग्रह का मिठान्त विसर्जन आवश्यक है क्योंकि—

मै माहि कभु प्राहि न मोरा,  
तनु धनु समु रनु पाविन्द तेरा ।<sup>58</sup>

इस ग्रह के गष्ट होने पर हो भयवत् कृपा होगी और सभी जीव 'लसमु पछाभि' सकेगा<sup>59</sup> और उससे मिसमे का प्रयत्न करेगा ।

### दुर्गुण

'मोले भाइ मिसै रघुराइया'

इसलिये—

परहूत मोम ग्रह लोका जाइ ।  
परहूत कामु, गोपु ग्रह काइ वी

किस मन इन दुर्गुणों के माध्यम से ही तो जीव को मरमाता है और उन्हें ब्रह्मज्ञान से दूर अज्ञान में लँसाये रखता

54 पृ ३३६, ६० ।

55 पृ ३५४, ६ ।

58. ट. ३३६, ६० ।

। पृ ३२४, ६ ।

55 दशोक्त १२ ।

57 दशोक्त १४७ ।

59 पृ ४८०, ७ ।

है। काम क्रोध, सोम, मोह आदि विकार ही ता मानव को पथ भ्रष्ट कर देते हैं। और इसलिये शीघ्र ही उन्हें काल का प्रास बनना पड़ता है। 'पाप करता मरि गइघा' और सुकर्मों के बिना दुष्कर्मों से जीवन का भार बढ़ता जाता है और यह पुसन्दा इतना भारी हो जाता है कि मानव भवसागर के पार नहीं पहुँच पाता। इस प्रकार दुष्कर्म एवं दुःगुण ही मानव के जीवन के लिये ग्राह के समान है।

### दुस्संगति

'मूरख सिद्ध बोसे भूखभारि।

क्योंकि— 'भोसत बोसत बड़ बिकारा'

इसलिए भलाई इसी में है, कि—'मिसे असन्तु मसति करि रहिए' विद्वानों ने सम्भवतः इसीलिए कहा है कि मुझों प्रपचा दुष्ट जनों से न मित्रता रखे और न कर ही। क्योंकि दोनों ही प्रबन्धाओं में अनिष्ट की सम्भावना है। 'बासनु कारो परसिए तव कपु सागै दागु' और इतना ही नहीं उसके पास रहकर के तो जीव की प्रबन्धा बेर के पास रहने वाले केले जैसी होगी, 'उह भूनी उह चीरिए' ठीक वही प्रकार दुस्संगति को आहने वाले सत्संगति से ऐसे ही दूर भागते हैं जैसे 'मासि चन्दन पर हरै, वह बिगम्भ तह जाइ'।<sup>60</sup> उस प्रकार दुस्संगति वह सत्वातावरण ही नहीं बनने देती जिसमें रह कर जीव सहोन्मुख हो सके।

60 श्लोक २२१।

61 पृ ८७७, १।

62 श्लोक १३१।

63 श्लोक ८८।

64 श्लोक ६८।

## पाषाणम्बर

“माये तिसकु हृषि मासा बना ।

सोगम रामु खिनीना जाना ॥”

कबीर ने तत्कालीन समाज के धार्मिक सोगों में पोषी पारि पण्डे, पुराण पाठी पंडित, मासा पहिने ब्राह्मण तिसक घारी ब्राह्मण, वेद-पाठी विद्वान, घूस रामाये जोगी गेरुए पहिने सम्पासी मंगे साधु, घोलेबाज तंत्रिक, कपटी पुजारी, बांग देठे मुस्मा, कुरान की भायतें पढ़ते मौलवी, मुर्गी मारते काजी तथा हज से भी लौट कर पाप करत हाजी को दखा या । उसकी प्ररीप्त घन्त घघुघों ने समाज क रूप को ठीक से पहिचाना या, इसी कारण निहर होकर क उन्होंने धारमा को पुकार को सरय की एसी कसौटी बनाया, जिस पर समाज के इन सब घम क ठकदारों को परखा जा सके । उसन हाप में डाक्टर का वह मदतर लिया जिससे वह देह के गले सब भाग को काटता गया और स्वयं ही महरम पट्टी भी करखा गया, ताकि समाज की देह नष्ट न होकर स्वल्प व हूष्ट पुष्ट हा जावे । इसी लिये उसने जिस पण्डे को भटकारा उसे घपती घोर घमुरकत भी लिया, जिस पंडित को फटकारा उसे नया पाठ भी पढ़ाया जिस ब्राह्मण क दुर दुराया उसे निर्मल भी कर दिया जिस बेर पाठी को लताड़ा उसे ऊपर भी चढाया, जिस पुजारी को पिक्कारा उसे घन्घ भी कर दिया जिस यागी को दुतकारा उस पुषकारा मा, जिस लीय यात्री का पुषकारा उस दुसगया भी, जिस मुस्मा का डांटा उस नया मूर भी दिखाया, जिस



मीसवी को डपटा उसे नया सवक भी सिखाया, जिस काजी को घुड़का उसकी घण्टस दुरस्त कर दी, जिस हाजी को मिड़का उसको सीवा रास्ता दिखाया इस प्रकार पच झट जन-साधारण को सुपय पर बसाया और समाज द्वारा ठुकराये हरिषनों को गले भगाया । इन कामों से ही कबीरा कबीर (महान) हो गया अतः उसके व्यक्तित्व के निर्माण में वहाँ इन बाह्याचारों के विरोध का विशेष महत्व है वहाँ देश की उत्कामीन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनतिक विपमताओं से टक्कर लेकर अदम्य बसाह एवं साहस से उसका विरोध करते हुए नवीन समाज के निर्माण का क्षत्र भी उसी को प्राप्त है । उसने बहुती हवा के सम्मुख सीगा करके न केवल उसके वेग को ही सहा या अपितु उस दिशा में धागे भी बढ़ा या । महापुरुष का यही बखान है कि यह स्वता परिस्थितियों के अनुकूल न बन कर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बासता घसे, और कबीर ने यही किया । नीचे लिखी पंक्तियों में हसी का विवरण मिलेगा ।

### पूजा

‘जो पाघर को कहते देव ।

ताकि बिरवा होवै सेव ॥’<sup>१</sup>

इसीलिए उसने पत्पर पूजा का विरोध किया है क्योंकि उससे उत्कामीन समाज बिहृत हो रहा था अंधविश्वास है ही ऐसा । अतः उसने कहा है—

‘छोरत न पाती पूजत न देवा ।’<sup>२</sup>

क्योंकि उसने स्वतः भी तो 'तीस वरस कथु देव न पूजा'<sup>३</sup> और पूजता मो क्यों ? 'पाखान गड़ि बं मूरति कीन्ही दे कै छाती पाठ ।'<sup>४</sup> फिर भी उसके प्रति थड़ा कैसे बाकी रह जाती, और यदि 'जे एह मूरति साची है तो गड़नहारो सार'<sup>५</sup> और उस ने कहा था 'न पायसु बोलै न बसु देह'<sup>६</sup> इसलिये उसकी पूजा बकार है । पूजा के लिये 'भूलो मासतो' पछे तोड़ती है, उसे कहा है कि पल तो चैतन पीप के अंश है, पर जिसकी पूजा के लिये तुम इन्हें तोड़ रही हो 'सो पाहन निरजीत ।'<sup>७</sup> वह ब्रह्म जिसकी पूजा के लिये यह सब आडम्बर है सर्वत्र ही विद्यमान और 'अप रग देस' रहित है । लेकिन संसार न तो 'पाहन परमसुर कीषा' और उसी को 'पूबै समु सवार ।'<sup>८</sup> यदि परमेश्वर वहीं न मिले तो पुजारियों के लिये उसे प्राप्त करना भी बड़ा आसान है और धनवानों के यहाँ तो भगवानों के ही दर रग जायें, क्योंकि वह तो 'ठाकुरु पूबहि मोसि सें,'<sup>९</sup> कितना सस्ता है भगवान् । लेकिन कबीर का भगवान् तो इनसे भी सस्ता है । उसके लिये तो—

'बहु पाती बिसनु डारी पूज सकर देउ ।

तोमि देव प्रतगि तोरहि करहि किसकी सेउ ॥'<sup>१०</sup>

हे जीव संसार के समो देव वा सर्वत्र विद्यमान है मात्र उसकी पहिचानने के लिये प्रमाचसु अपेक्षित है । इस प्रकार

३ पृ. ४०६, १२ ।

४. पृ. ११६०, १२ ।

५. श्लोक १३६ ।

१० ४५६, १४ ।

४, ५. पृ. ४०६, १४ ।

७ पृ. ४०६, १४ ।

८ श्लोक १३५ ।

-पत्थर पूजा, तथा मूर्ति पूजा के साथ २ बहुदेवोपासना का भी विरोध करते हुए जीव को सतक किया है कि 'तू क्यों व्यथ ही 'बिबी देवा पूजहि डोसहि ।'<sup>11</sup> लेकिन भ्रमण चीन जीव का 'मन बजरा रे', जो, 'पूजन करत बहु देव'<sup>12</sup> अर्थात् तीर्थ स्थानों में उसे प्रुमाये लिये जाता है । जब कबीर पर कोई विद्वान् सही करता तब वह पूजने वालों को कह देता है 'बत पूजि पूजि हिम्बु मूए,<sup>13</sup> लेकिन उसके हाथ कुछ न सगा । इसलिये, उसमें तो एक मात्र, 'निरंकार निरवानी' ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया ।<sup>14</sup> क्योंकि—

जो हरि सा हीरा छाड़ि के, करहि धाम की घास ।  
ते नर दोजक चाहिगे सति मासै रविदास ॥<sup>15</sup>

### स्नान

संधिघा प्रात इस्नानु कराहीं ।

बिठ भए दापुर पानी माहीं ॥<sup>16</sup>

सामान्य स्नान की तो बात ही छोड़ें यदि 'घतरि मैनु' है तब तो मेढक के समान, चाहे 'तीरथ नाबै तिसु बकुष्ठ न जाना'<sup>17</sup> न केवल 'बहु तीरथ भ्रमना'<sup>18</sup> व्यर्थ है अपितु जो 'हूठ तीरथ चाहि'<sup>19</sup> तथा 'गंगा तीर जो घर करहि' और 'पीवहि निर्मसु मीर',<sup>20</sup> यह सब बाह्याचार भी बेकुष्ठ नहीं

11 पृ ३३२, ४२ ।

13 पृ. ६२४ १ ।

15 श्लोक २४२ ।

17 पृ ४८४, ३७ ।

19 श्लोक १३२ ।

12 पृ. ३३२, २७ ।

14 पृ. १३२०, २ ।

16. पृ ३२४, २ ।

18. पृ. ४७६, ५ ।

20 श्लोक २४ ।

पढ़ेंवा सकते । तीर्थ यात्रा, तीर्थ निवास, तीर्थ स्नान और तीर्थ मरण यदि वकार न होते, तो काशी निवासी पण्डितों का विरोध करने के लिये कबीर काशा छोड़ कर मगहर क्यों जाते । उन्होंने यह सन्देश ही नहीं दिया अपितु 'सगल जनमू शिवपुरी' गवाने बाबा जुसाहा सबमूच ही मरती वार 'मगहरि उठि घाह्या' वा<sup>२१</sup>। यदि अब भी कबीर के धर्म को मकद धर्म न कहा जाये तो क्या कहा जाये उन्होंने स्वतः कहा है—

बहुत बरस तपु कोषा कासी ।  
मरनु भइया मगहर की वासी ।  
कासी मगहर सम बीषारी ।  
घोड़ी भगति कसे उतरसि पारी ।<sup>२२</sup>

यह काशी और मगहर नहीं है जो मनुष्य को स्वर्ग प्रप्त-या-यदम योनि देते हैं यह तो भक्ति ही है । यदि भगति प्राप्ति होगी, तो वह मक-पार नहीं पढ़ेंवा सकती ।

अथ

मांग, मछली रामे बाले यदि व्रत रस कर वैकुण्ठ जाना चाहें तो वह वैकुण्ठ न जाकर 'रसातल जाहि' क्योंकि सत्कर्म किये बिना दिशाबटी जप, तप क साथ 'किष्का वरनु किष्का इलानु'<sup>२३</sup> इनका भी कोई मूल्य नहीं । ब्राह्मणों व बीबीस उपवास और काजियों व महीने भर के राज क्या उन्हें मक पार पढ़ेंवा सकते हैं ?<sup>२४</sup> कभी भी नहीं उन्होंने न कबस व्रत,

२१ ट. ३२६, १५ ।

२२ ट. ३२६, १५ ।

२३ ट. ३३३, ६३ ।

२४ ट. ३३४६, २ ।

उपवास व रोत्रे का विरोध किया है अपितु मृतक पिण्ड घोर  
थाद की तो सांस्तार दुगति द्यति हुए कहा है—

‘बीबत पितर न माने कोठ,  
मूए सराष कराहि।’<sup>25</sup>

तथा कुछ मोक्षम जिसे उनके लिए प्रसंग से दास देते हैं  
उसे ‘कठपा कूकर लाही इसना ही नहीं घपने मिट्टी के  
बेबी देवता के सम्मुख ‘बोत्र बेत्री’ बीबी की भी बलि चढ़ा देते  
हैं।<sup>26</sup> इस प्रकार उन्होंने दृढ़ धर्मों में यत्न, उपवास रोत्रा,  
थाद, मृतक पिण्ड तथा बलि चढ़ाने का विरोध किया है घोर  
मानव को आन्तरिक दृष्टि से सबाधारी होने का सन्देश  
दिया है।

‘अपनी काठ की बिधा दिखाबहि सोइ’ न केवल काठ  
की यासा का अपितु माय विसकु<sup>27</sup> का भी उन्होंने विरोध  
किया है क्योंकि—

‘इष्ठा, मुदरा सिषा साधारी।  
अम के भाइ मर्व भेल धारी।’<sup>28</sup>

धूम रमाये हुए साधुओं के सापा, सिलक त्रिपुण्ड, कच्छमामा,  
इष्ठा मुद्रा, शृंगी सभी बाह्य भेषों का उन्होंने विरोध  
किया है। क्योंकि ‘गूहु तजि बन सण्ड जाइए’ ऐसे पापी  
साधुओं ने ‘अजहु बिकार न छोड़ा, क्योंकि उनका ‘भनु मंडा’  
है।<sup>29</sup> इसी लिये तो आगे उन्होंने अटा भस्म सेपन किया

25 पृ ३३२, ४५।

27 श्लोक ७२।

29 पृ २२६, ८।

26 पृ ३३२, ४५।

28 पृ ११५८, ६।

30 २२५, ३।

घोर 'गुफा महि वासु किया'<sup>31</sup> लेकिन यह सब बेकार है। घाइम्बरी होने के कारण उन्होंने अपना नाम 'अमक पट मिसाइया'।<sup>32</sup> क्योंकि जब तक 'भगति मारदी रिद न घाई' तब तक यह सब पहरावा और बाह्यावरण व्यर्थ है। कवीर के तिममिसा देने वाले व्यंग अब भौतिक जीवन से ग्रहण किये गये हैं तब बहुत प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए हैं।

मूड मुडाण जो निदि पाइ ।

मुकसि भेद न गइया काइ ॥<sup>33</sup>

घोर भंगे रहने से ही यदि मोक्ष मिलता है तो सभी पदु उसके अवश्य अधिकारी हैं।

भारीक ब्रह्म साधनाओं में प्रथवा तन्त्र मन्त्र से मन को बन्ध में करने वालों का भी उन्होंने विरोध किया है। सिमरण का महत्व बताते हुए उन्होंने कहा 'तिस क धागे तनु न मस्तु'<sup>34</sup> इस प्रकार फिर मुडा कर प्रथवा अटा रत कर, नगे रह कर या अधिक बन्ध पहन कर, मसम लगा कर या पूति रमाकर, धारा धाप कर या तिलक धारण कर, कण्ठमासा पहिन कर या मासा फर कर, जप-तप से शरीर को जला कर या कठोर कर, कन्द-मूल प कर प्रथवा उपवास कर विन्दु ग्या कर, या घाबट कर, गुफा को घर बना कर या धाभ्य स्वम सुमक कर मृगधरों को साधो जान कर प्रथवा पगुमात्र ममक कर मन को ही धावास बनाकर या साधना स्वत ममक कर त्रिन साधुओं और योगियों ने योग प्राप्ति

31 पृ ११०३ २।

32 पृ ६४४, ३।

33 पृ १०४, ४।

34 पृ ६०१ ६।

का प्रयत्न किया था। उन्हें कबीर ने सतक किया 'भावे साम्ने  
केस कर, भावे घररि मुडाइ।'<sup>35</sup> इतना ही नहीं

कबीर मनु मूढिया नहीं, केस मुडाए काहं।

जा किभु किधा सा मन किया, मु डा मुहु धमाय।<sup>36</sup>

घौर ऐसे ही बाह्याहम्बरिया के क्रिया कलापों को देख कर  
कबीर की धारणा को जो ठस पहुँची थी। उमी का फखन इस  
पद में देखने को मिलता है,

बासन मांखि बराबहि ऊगरि काठि घोइ जनाबहि।<sup>37</sup>

इतनी पवित्रता में भोजन बनाना बासे सारे मानस  
साबहि मनुष्य को हा सा जात है। यह देख कर ही कबीर  
ने उन्हें 'हरि के सन्त न कह कर 'बनारसी के ठा कहा है।<sup>38</sup>  
इसके प्रतिरिक्त उसने बनारस में 'भूड पसोमि कमर धमि  
पोषी'<sup>39</sup> ऐसे ब्राह्मण भी देखे थे। संक्षेपतः उसने ब्राह्मण का  
ऐसा विरोध किया था जिससे कोई ब्राह्मण न बच सका,  
जहाँ 'हुत पूजि पूजि हिन्दू मूए' वहाँ 'तुरक मूए सिर माई'  
'जटा धारि धारि जोगी मूए तथा 'बेद पढ़े पढ़ि पण्डित मूए'  
लेकिन 'सिरी गठि इमहि न पाई'<sup>40</sup>। मूल बात यही है कि जब  
तक 'विस्तिधा स होइ उबास,' जीव ने अपना मन मिमल  
नहीं कर लिया तब तक इन ब्राह्मणों और ब्राह्मणों का  
कोई मूल्य नहीं, उसने अपने युग के पञ्चमकार सेबी साक्त  
को भी सतक किया था क्योंकि भक्ति के बिना 'साक्त बारी

35 श्लोक २५।

37 पृ ४७५, ०।

39 पृ ८७१, ६।

36 श्लोक १०१।

38 पृ. ४७५, २।

40 पृ ६५४, १

कामरी धोए होइ न संतु<sup>४१</sup> कबीर ने केवल हिन्दुओं के घाट  
 स्वर्गों का ही विरोध किया हो एसी बात नहीं निर्मोक उसने  
 मृतसममानों को घाट हाथों लिया था। क्योंकि उसका सन्देश  
 किसी मत सम्प्रदाय, धर्म या जाति सीमाओं में बद्ध न था।  
 वह तो मानवमात्र के लिए दिव्य सन्देश था।

कबीर मुनां मुनारे किया चढ़हि साईं न बहरा होइ।  
 जा कारनि तू बांग देहि दिव ही भीतरि जाइ।<sup>४२</sup>

बांग देने वाले मुन्ना को बताया कि उसका खुदा न  
 तो बहुरा है और न दूर ही है। नमाज पढ़ते जाते हुए  
 किया उनु पाहु कीया मुह घोइया<sup>४३</sup> बांग को मुन कर 'बजु'  
 (नमाज से पहिले हाथ मुह घादि घोना) करके तुम अपने को  
 पवित्र समझते हो लेकिन जब तब दिन महि कपटु निवान  
 गुजारी<sup>४४</sup> तब तक यहिस्त नहीं पहुँच सकत इस बात को न भूलो।  
 तसबोह (माना) तथा इबादत प्रायना) के पक्कर में पड़  
 हुए मौलवी को भी धिक्कारा है क्योंकि यहाँ तो पवित्र मात्र  
 नाओं का ही महत्त्व है और फिर काओ महम्म जाना<sup>४५</sup> वह  
 कर रमजान क महीन में 'राजा रमन का भी विरोध किया  
 है क्योंकि वह 'रोजा घर मनावे घमटु मुपादति जोब  
 संपारी'<sup>४६</sup> क्योंकि उसने 'दिन महि कपटु है'<sup>४७</sup>। इसी लिये ता  
 रोजा रमने बाना वह स्वाद न निण जोब का संहार कर

४१ श्लोक १००।

४३ पृ. १३५०, ४।

४५ पृ. १३५६, २।

४७ पृ. १३५०, ४।

४ श्लोक १८४।

४४ पृ. ११५८, ४

४६ पृ. ४८३, २६।



कैला है। मुदा जो सब व्यापक समझने वाले मुल्ता से कबीर ने यह भी पूछा है, 'किउ मुरगी मारै' लेकिन इन 'हलामु का उसके पास कोई उत्तर नहीं। पश्चिमि अमल मुकामा समझ कर हज पर जाने वाले काजी को भी उसने बताया है कि, 'बिल मंहि खोजि—एहि ठउर मुकामा<sup>48</sup> और इन लिए उसने घोषणा की है—

मनु करि मका बिबसा करि देहि ।

मोसन हाह परम पुरु ऐही ॥

बहु रे मुल्ला बांग निबाज ।

एक मसीठि दसै बरबाज ॥<sup>49</sup>

मन को मक्का बना कर देह को परिधम दिया घनाभो और तब देह रूपी मस्जिद के दरों द्वारों से बांग बेकर ममाज पड़ो। तब कही उसे बिल में पा सकोगे। उमने कुरान पढ़ने को भी तब तक बेकार बताया है जब तक उसकी, 'बिल मंहि खजरि न होइ,<sup>50</sup> इस प्रकार जहाँ कबीर ने ममाज करवाने वाले मुस्ला को बांग बजु ममाज तथा मस्जिद की सफाई से परिधिन करवाया वहाँ तयाकचित धार्मिक मौलवी को कुरान की धायतों पर बिभार करने के लिए प्रेरित भी किया। इतना ही नहीं धर्माधिकारी दीख को तसवीह और इबादत का महत्व समझाते हुए हज के असली रूप के दखन भो करवाये। राजे के घाव कुरवानो से पेट भरने वाले मुर्गी मार न्यायाधिकारी काजी को न्याय का सबक

सिखाया तथा अन्त में हज़ से लौटत हुए मिरास हाजी को सब्बी हज़ का सब्बी हज़ का राह दिखाया । इस प्रकार हिन्दु और मुसलमान का भेद भाव मिटाते हुए दोनों के खोखले बाह्याचारों आडम्बरों से उन्हें परिचित करवाया । सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने शून्यता का विरोध कर मानवीय धरातल पर एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया था । धर्म जाति, सिंग और देश के आघार पर मानवीय विभाजन को अनुचित बताया था । क्योंकि—

गरभवाम महि कृनु नहीं जाती ।

ब्रह्म बिन्दु से समु उत्पत्ती ॥<sup>५१</sup>

म मानने वाले मुन्सा को फटकारते हुए उसने पूछा था कि यदि मुदा ने तुम्हे तुक बनाया है ता तू क्यों बलपूर्वक मुन्सा करता है<sup>५२</sup> । यह काम भी वह स्वतः ही करेगा मुन्सा की मुर्ती हुई गदन देख कर कबीर न घुटकी सी—

मुमति कीण तुम्हु जे होइगा

घटरत का किआ करी ए ।

अरथ सरीरो मारि न छोडै,

ताते हिन्दु रखीए ॥<sup>५३</sup>

मुन्सा को बचारा घाभा हिन्दु बन गया लेकिन इतन में बाह्य ज्ञानपत्र दुबिदग्ध हो गया । कबीर न भ्रष्ट हूये उस भी लमबारा— तुम कठ ब्रह्म हम कठ मूद । वह मौन था कबीर ने समीप प्रहाण किया—

51 पृ. ३२४, ७ ।

52. पृ. ४७७, ८ ।

53 पृ. ४७७, ८ ।

जो तू ब्राह्मणु ब्रह्मणी जाइया  
तो भान बाट काहै मही अइया ।<sup>54</sup>

कबीर का तर्क ज्ञान का तर्क नहीं था। वह तो अनुभूति का सत्य था। दोनों के पास उसका कोई उत्तर न था। अतः दोनों को ही कबीर ने समझाया कि 'मत्त हरि पूछै कउन है मेरे आसि न नाउ'<sup>55</sup> भगवान ने मन्त्र की जति तो क्या नाम तक भी कभी नहीं पूछा। इसीलिए तो वह कहता है कि —

हमरा भगवा रहा न कोउ ।  
पच्छित मुत्मा छांड़े दोउ ॥<sup>56</sup>

इस प्रकार सामाजिक विपत्ता को दूर करने के लिए भूत-छात जात-पात तथा कम व्यवसाय के सभी भेदों का दूर कर भगवान के दरवार में प्रत्येक मानव की एक ही आसि का सन्देश दिया। एक ही धर्म मानव धर्म का प्रसार किया। एक ही ब्रह्म एक मात्र पूण सत्य ब्रह्म का बोध कराया। एक ही मार्ग अनवरत अनन्य तत्त्वीनता का सचित मार्ग सुझाया। कौन जानता है गुठ नामक न किन्तने तत्व यही से संगृहीत किये थे? कौन जानता है अकबर का दीम इलाही इसी का अस्पष्ट प्रतिबिम्ब मात्र था? कौन जानता है रबीन्द्र के अथाह रहस्यवाद की आह अवोध कबीर के शब्दों में ही छिपी हुई थी? कौन जानता है गांधी के हिन्दू मुस्लिम के ऐक्य की भावना का आदि स्रोत कबीर के ही कुछ शब्द हैं।

घोर कीम जानता है धरविन्द के धानस्यमय सिष्काम कर्मण्य जीवन के मूल आध्यात्मिक तन्तु जुसाहे के सूत स ही एकत्र बिये गये हैं इसी बिये कबीर धार्मिक घोर सामाजिक क्षेत्र में घमर हो गये है।

कबीर की मर्मेना में जितनी प्रघण्डता है उसकी डाँट में जितना तात्रता है उसके ब्यग में जितनी मुस्कराहट है, उसक वणन में जितनी सजीवता है, उसके कयन में जितनी सादगी है, उसक सन्नेष में जितनी गहराई है, उसके शब्द में जितनी मम स्पर्शिता है, उसक काव्य में जितना रस है उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति में प्रनुभूति है। यही कारण है कि आठम्बर मरे सम्पूर्ण जगत् के विरोधी कबीर का विरोध करण भी कुछ न कर सके। राज्य धामक उसे मार कर भी मार न सके, समाज उसका बहिष्कार करने भी उसे छोड न सका, गमामग्न उसे ठोकर मगा कर भी ठुकरा न सके, लेकिन दुःख की बात यह है कि हिन्दू तथा मुसलमान उसे घपना कह कर भी घपना न सक। सम्भवत प्रत्येक दिव्यारमा का ऐसा ही घम्ट हाता है घोर कबीर भी उसके घपबाद न थ।



## संतों की सामान्य मान्यताएँ

सौक्तिक एवं पारम्परिक जीवन में अदभुत सतुलन और समन्वय स्थापित कर गौरवमय व्यक्तिगत जीवन व्यतित करने वाले संतों ने समय समय पर समाज का पथ प्रदर्शन कर युग-नेता का रूप ग्रहण किया है। वस्तुतः संत कोई व्यक्ति विशेष न होकर भावना विशेष है, जिसका प्रसार अन्याय युगों में विभिन्न व्यक्तियों के माध्यम से हुआ है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो पता चलता है, कि इस भावना विशेष के मूल सत्वों में प्रायः परिवर्तन नहीं होता। युग का आवश्यकता और व्यक्ति की रुचि तथा सामर्थ्य के अनुरूप इन सत्वों के अनुपात और क्रियात्मक प्रसार में थोड़ा बहुत अन्तर घाता रहता है पर इससे मूल भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं घाता। भारतीय मध्य-युग के इतिहास को साधक बनाने के लिए ही मानें इस भावना का यहाँ विकास हुआ—जो कबीर जैसा सशक्त व्यक्तित्व पाकर अपने प्रौढ़ रूप में प्रतिफलित हुई।

पतक सम्पदा में प्राप्त धार्मिक दृष्टि और नतिक समृद्धि संतों के जीवन का सबसे बड़ा धामुपण रहा है। उनके जीवन की कर्मण्यता इस धार्मिक दृष्टि का ही बरदान है और आन्तरिक गुणों के विकास के कारण प्रकृत व्यक्तित्व इस नतिक समृद्धि की ही देन है। समाज ने तथा-कथित

निम्न-वर्ग से उद्भूत इन संतों को समाज ने ठुकराने का दुस्साहस एकत्रित किया, लेकिन कौन जानता था, कि यह दुस्साहस संतों को ही वह अदम्य शक्ति प्रदान करेगा, कि वे इस आडम्बर पूण समाज को ही ठुकरा कर अपने पीछे लगा लेंगे। समाज के इस दुस्साहस ने उन्हें तन कर सड़े होने की शक्ति प्रदान की। उन्हें अपनी पणित मामध्य और माम्यताओं पर जो बिदवास था, वह और भी दृढ़ हो गया। इस धारमनिष्ठा और धारम विश्वास के बल पर वे न केवल स्वयं ही सड़े हुए, अपितु समाज के कुछ व्यक्तियों को भी उन्होंने अपने साथ लड़ पाया। यह उनकी सफलता का पहला बिन्दु था। धीरे-धीरे समाज उनकी पुकार मुमम पर बिबध हो गया। फलतः मस्ती में बड़ी गई कई बातों ने समाज को अनायास ही प्रभावित करना धारम किया क्योंकि उनके यथार्थ-विचरण में सत्य का बल था, जिसको बहुत देर तक छेपना नहीं की जा सकती। इस प्रकार संत भाषना, जो अथ तक व्यक्ति के माम्यम से ही परिधिक्त होती थी, अब अविच्छिन्न धारा के रूप में सामाजिक परम्परा ही बन गई। मध्य-युगीन भारतीय समाज को इन संतों की यह सबसे बड़ी देन है। यह अविच्छिन्न सामाजिक परम्परा ही संतों की मामाम्य माम्यताओं की साधन-भूमि है। एक परम्परा में जमी धान वासी माम्यताओं में कोई परिवर्तन न हुआ है। सभी बात नहीं लेकिन इन परिवर्तन का सम्बन्ध उनके मूल-वर्तों से न होकर उनकी अविच्छिन्न या उनके बाह्य आवरण-मात्र से ही अधिक है। इस प्रकार कबीर में कुछ पहले से ही संत विधाराधारा व जो तरह बिबसित हो रहे थे, वे न केवल कबीर में पुनर्स्था बिबमित और सम्बद्ध

होकर प्रकट हुए, अपितु बेर तक समाज को प्रभावित करने वाली सशक्त विचारधारा के रूप में तब स उसकी अविच्छिन्न परम्परा भी प्रकाशित हो चमी जो आज तक इस देश में उसी तरह जीवित थीर जागृत है । सच पूछा जावे सार मकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द महात्मा गांधी, श्री अरविन्द तथा विनोबा भावे उसा परम्परा के आधुनिकतम फल हैं ।

सर्तों का समष्टिगत व्यक्तित्व इन सामान्य मास्यताओं की आधार-भूमि है । शौकिक तथा पारमौकिक जीवन की साधना उन्होंने एक ही व्यक्तित्व के माध्यम से की है । सांसारिक विषमताओं से घबराकर वे जंगल में भाग कर ब्रह्म की साधना करने नहीं चले गए बल्कि कमप्य जीवन विता कर उनसे जुक्त पड़ इस प्रकार शौकिक उसम्पनों को त्रिमात्मक जीवन के माध्यम से सुसम्पने का प्रयत्न किया । और इस त्रिमात्मक कमप्य जीवन के माध्यम से सनायास ही उनकी परलोक की साधना भी होती रही । वे न कमी मंदिर गए, न मूर्ति-पूजा की । दूध, सीध, स्नान उपवास और मासा फरमे से भी वे कोसों दूर रहे फिर भी इस प्रकार के आधार-प्रधान आह्वानों से वे कहीं अधिक धार्मिक बने रहे । इन आह्वानों ने पारिविक और पारमौकिक अगत में समाज के लिए जो गार्ई पाट रकनो थी, वैयक्तिक विचार और आधार से इन्होंने न केवल उसे भर दिया, अपितु जन-मानस के नित्ये प्रयुक्त राज पथ का भी निर्माण कर दिया । इस प्रकार वैयक्तिक स्वस्य आधारगत जीवन इनकी सामान्य मास्यताओं का सबसे सशक्त आधार है ।

समाज की धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व नास्तिक सभी प्रकार की समस्याओं का उन्होंने वैयक्तिक जीवन के माध्यम से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उचित साधन और सत्य साध्य पर विश्वास ने उन्हें जो धार्मिक शक्ति प्रदान की थी, उसी के बस पर वे इन समस्याओं से घबराए नहीं। यह ठीक है, कि वैयक्तिक सामर्थ्य की सीमाओं के कारण वे इस में से बहुत कम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके, लेकिन अधिक महत्व-पूर्ण यह है, कि वे विपत्तियाँ उनके व्यक्तित्व को बिगड़ ललित न कर सकीं और वे सदा इनसे जूझते ही रहे—मागे कभी नहीं और इसी लिए हारे भी कभी नहीं। धार्मिक आदम्बर्गों और आवरणों का उन्होंने कुसकर विरोध किया। सामाजिक कुरीतियों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया और यथा-सम्भव उन पर भी कुठारापात किया। राजनैतिक अत्याचारों से जूझते २ उन्होंने सिर तक बटा दिया पर उसे झुकने नहीं दिया—यह क्या कम है। और धार्मिक दरिद्रता से अपन को उभारने के लिये कोई जीवन भर बपड़ा बुनता रहा तो कोई जूतियाँ ही पाँटता रहा—यह उनके जीवन की महानता नहीं तो और क्या है। कुस मिनाकर समाज की किसी भी दृष्टि के प्रहार से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को विपटित नहीं होने दिया यही उनकी गपमता का रहस्य है। इसीलिए वे सत-व्यक्तित्व की परम्परा में संत भावना का उपाति को जीवन और जागृत करा सके। जीवन की समा समस्याओं के प्रति उनकी यह सन्तुलित दृष्टि उनके मुश्किल व्यक्तित्व की परम्परा का बनाए रखा सही।



होकर प्रकट हुए अपितु वेर तक समाज को प्रभावित करने वाली सशक्त विचारधारा के रूप में तब स उसकी अविच्छिन्न परम्परा भी प्रवर्द्धित हो चली जो धाम तक इस देश में उसी तरह जीवित और जागृत है । सच पूछा जावे तो र मकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द महात्मा गांधी, श्री भरविन्द तथा विनोबा भावे उसी परम्परा के प्राधुनिकतम फल हैं ।

सत्यों का समष्टिगत व्यक्तित्व इन सामान्य मान्यताओं की आधारभूमि है । सौकिक तथा पारसौकिक जीवन की साधना उन्होंने एक ही व्यक्तित्व के माध्यम से की है । सांसारिक विषमताओं से घबराकर वे जंगल में भाग कर ब्रह्म की साधना करने नहीं चले गए बल्कि कमष्य जीवन पिता कर उनसे जूझ पड़े इस प्रकार सौकिक उत्सर्जनों को क्रियात्मक जीवन के माध्यम से सुलझाने का प्रयत्न किया । और इस क्रियात्मक कमष्य जीवन के माध्यम से अनायास ही उनकी परसोक की साधना भी होती रही । वे न कमी मंदिर गए, न मूर्ति-पूजा को । व्रत, तीर्थ, स्नान उपवास और मासा फरमे से भी वे कोसों दूर रहे फिर भी इस प्रकार के आधारप्रधान ब्राह्मणों से वे कहीं अधिक धार्मिक बने रहे । इन ब्राह्मणों ने पारमिब और पारसौकिक जगत में समाज के लिए जो सार्ई पाठ रखे थे वे वैयक्तिक विचार और आधार से इन्होंने न केवल उसे भर दिया, अपितु जन-मानस के लिये प्रशस्त राज पथ का भी निर्माण कर दिया । इस प्रकार वैयक्तिक स्वस्थ आधारगत जीवन इन ही सामान्य मान्यताओं का सबसे सशक्त आधार है ।

समाज की धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक व सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याओं का उन्होंने वैयक्तिक जीवन के माध्यम से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उचित साधन और सत्य साध्य पर विश्वास ने उन्हें जो प्रत्तिक्रमिक शक्ति प्रदान की थी, उसी के बल पर वे इन समस्याओं से घबराए नहीं। यह ठीक है, कि वैयक्तिक सामर्थ्य की सीमाओं के कारण वे इस में स बहुत कम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके, लेकिन अधिक महत्व-पूर्ण यह है, कि ये विपन्नताएँ उनके व्यक्तित्व का बिगड़ सक्षित न कर सकीं और वे सदा इनसे जूझते ही रहे—भाग्य कभी नहीं और इसी लिए हारे भी कभी नहीं। धार्मिक धारणाओं और धारणों का उन्होंने खुसकर विरोध किया। सामाजिक कुरीतियों का उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया और यथा-सम्भव उन पर भी कुठाराघात किया। राजनैतिक धारणाओं से जूझते उन्होंने सिर तक कटा दिया पर उसे मूकने नहीं दिया—यह क्या कम है। और धार्मिक दरिद्रता से धन को इनाम के लिये कोई जीवन भर बपड़ा चुनता रहा तो कोई जूझता ही गाँठता रहा—यह उनके जीवन की महानता नहीं तो और क्या है। खुस मिमांसा समाज की किसी भी दृष्टि के द्वारा वे उन्होंने अपने व्यक्तित्व को विभक्त नहीं हान दिया और उनकी सफलता का रहस्य है। इसीलिए वे अनु-व्यक्ति-व-पाथेरा में संत भावना की ज्योति को जीवन और प्रकाश बन सक। जीवन की सभी समस्याओं के प्रति उन्हें सदैव सन्तुष्ट दृष्टि उनके मूर्खित व्यक्तित्व की परभावना बन सक।

इसी व्यक्तित्व के कारण उनकी जीवन धीरे-धीरे एक प्रति विशेष दृष्टि विकसित हुई। विश्व की चतुर्दिक समृद्धि और उसकी सामग्री उनके जीवन-यापन में साधन से अधिक कोई स्थान न ग्रहण कर सकी। उनका सक्षय सदा ही इससे भिन्न रहा। इसीलिए उनमें कमी ईर्ष्या न हुई और उस साध्य की ओर बढ़ते हुए भी वे सब इकट्ठे ही रहे। धार्मिक साध्य को स्वीकार करने के कारण उनके जीवन-यत्न में एकक्यता के साथ २ स्वायत्तता भी बना रहा। वस्तुतः जीवन-दशक में इस समता में ही संत भावना को नींव की दृढ़ता और स्थिरता प्रदान की।

वैयक्तिक जीवन में सभी संतों ने अनुभूति का महत्त्व स्वीकार किया है। और इसी आधार पर उन्होंने क्रियात्मक जीवन बिताया है। यह अनुभूति ही उनके धर्म की आधारभूमि थी। इसीलिए सामाजिक परम्परा में मान्यता प्राप्त आचारों को भी उन्होंने वहीं तक प्रथम दिया, जहाँ तक वे उनकी अनुभूति की कसौटी पर खरे उतरे थे। उन सामाजिक या धार्मिक आचारों और विषयों का उनके जीवन में कोई स्थान न था, जो उनकी अनुभूति की कसौटी पर पूरे न उतरे थे। इस प्रकार उनका जीवन वैयक्तिक पहले था, सामाजिक बाद में।

उनकी जीवन-दृष्टि मूलतः मानवता-वादी थी। इसी लिए छीबा, दर्जी, माई, जुमाहा, बमार और राजा सभी एक भक्ति के सूत्र में पिरोये जाकर 'संत-माला' के जनमघाटे 'मायिक' बन गये। गठ छः सात सताब्दियों में भारत में

कारों सह समुदायों ने काम लिया, लेकिन इस मानवतावादी दृष्टि से कोई भी दूर न रह सका। धर्म धर्म, कम ब जाति-प्राधार पर मानव-समाज का विभाजन किसी न भी स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, उत्तराधिकारी न चुनाव में भी नमों से किसी प्राधार या पुत्र-परम्परा का भी स्वीकार न किया गया, अपितु जिस सिद्ध में मानवीय तत्व सर्वाधिक निहित हो सके हैं, उसे ही गद्दी का अधिकारी बनाया गया। वैयक्तिक स्वार्थों के कारण सदा ही इसके विरुद्ध विद्रोह हुआ है, लेकिन मानवतावादी दृष्टि इस विद्रोह के सम्मुख कभी झुकी नहीं—इसी से इसका महत्व स्पष्ट है।

सतों ने काव्य-निर्माण का बीड़ा कभी नहीं उठाया था और न ही काव्य-गत बिद्येपताओं से उनका कोई परिवर्धन ही था। कभी न वैयक्तिक प्राज्ञाद् में न गान पर विवश हो गये थे। इस प्राणतिक विवशता में अनुभूति को या अभिव्यक्ति हुई प्रथम जन-सामान्य का जिस बाणी में उन्होंने अपना सन्देश दिया, उसे हम उनका काव्य समझ बैठे। मूलतः काव्यत्व तो उनके संदेश का बहुत गौण तत्व था, इसीलिए साहित्यिक दृष्टि से इसका मूल्यांकन करने वाले इनके साथ ध्याय न कर सक। उनका सम्पूर्ण काव्य का प्ररमा श्रोत वैयक्तिक आनन्द तथा सामाजिक संदेश रहा है, यतः मूल्यांकन करते हुए हम उसे सुना नहीं सकते।

संत-भाषना की यह सामान्य पृष्ठभूमि थी, जिस पर विचारधारा विरोध का प्रासाद निर्मित हुआ। पाषाणी पंक्तियों

में इसका विशेषताओं का उल्लेख करने का प्रयत्न किया गया है।

संतों का ब्रह्म अनिर्बचनीय है। दार्शनिक दृष्टि से उसे मद्धत, विशिष्टाद्वैत भाद कोटियों में नहीं रक्खा जा सकता। वस्तुतः संतों ने उसे बौद्धिक या तार्किक-मद्धति का माध्यम नहीं प्रदान किया, परंतु इस दृष्टि से उसकी उचित व्याख्या भी नहीं हो सकती। कबीर के ब्रह्म पर विचार करते हुए हम देख पाए हैं कि वह न केवल इन्द्रियातीत है, अपितु वह तो त्रिगुण सगुणातीत भी है। वह तो केवल अनुभूति का विषय है। इसीलिए उसके स्वरूप और गुणों की ध्यानात्मक व्याख्याओं के बाद भी कभी कोई संत महसूस नहीं पा कि वह समाज के लिये ब्रह्म के रूप का स्पष्टीकरण कर सका है।

उसका गुण-नाम करते = 'सुर नर मुनि जन' का ता कहना ही क्या स्वतः ब्रह्मा तक चक गए, लेकिन धनन्त का कोई धत न पा सके। उपनिषदों की तरह ब्रह्म की 'नेति' परक व्याख्या भी यहाँ मिलती है, उसे सर्वज्ञ सर्व व्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वकर्ता सर्व नियंता आदि स्वीकार किया गया है। मूमत त्रिगुण ब्रह्म अनिर्बचनीय है लेकिन गुणों के माध्यम में जब उसको स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है, तो वह सगुण निराकार रूप ग्रहण कर लेता है। लेकिन संतों का सगुण निराकार स्वरूप भी तुलसी जैसा सगुण नहीं क्योंकि वह तो लौकिक गुणों से धतीत ही है, इसलिये मूमत हम उसे त्रिगुण ही स्वीकार करते हैं।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी का प्रसार है लेकिन वह स्वतः

प्रबिहृत और निमित्त गृहता है। सृष्टि का एक माप वही उपादान और निमित्त कारण है। सर्तों की दृष्टि में सृष्टि उकरबद मिथ्या नहीं, वह सत्य है, क्योंकि सत्य ब्रह्म का हा प्रसार है। सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीव भी उसी तरह सत्य है। बस्तुतः आत्मा और और परमात्मा में उहोंने अज्ञानि सम्बन्ध को स्वीकार किया है। अग्नि-स्फुटिगवत् जीव में ब्रह्म के सब गुण हैं उन्हें वह विकसित कर ब्रह्म से तादात्म्य और ऐस्य स्थापित कर अपने व्यक्तित्व का उमी में तिरोहण का सबठा है। मह जीव के जीवन का मध्य या साध्य है वा प्राप्त करना दुष्कर है, लेकिन सर्तों में मानव को सदा इसक प्रति सतर्क किया है, और इसे प्राप्त करने की प्रेरणा भी दो और माग भी बताया है। इस भेद के आभास का कारण उहोंने सपिपी माया को बताया है। बस्तुतः माया ही जीव को भ्रमा कर इस ससार के प्रसोभनों में कसा देती है और उम मध्य में पम अष्ट कर देती है। इन्द्रियों के बग में होने के कारण जीव मूलतः कंचन और कामिनी का विकार हो जाता है। सौखिक समुद्रि की चाह उस सब प्रकार के दुष्कर्मों की प्रेरणा देती है और कामिनी-भारी मानव की वासनाओं को उभार कर उससे चित्त को भ्रमित कर देती है। सर्तों न इनका विरोध नहीं किया, अपितु इनका परिहार किया है। भ्रमान्त बानी माया से जीव को सन्नक करतै हुए उहोंने अनाद्यक धन-संप्रह को अहां बुरा बताया है, वहां मूलतः कामिनी में लिप्त हा जाने को भी भरपेट निन्दा की है। सेविन धन और रत्नी का न मून बने सापुषों में भी वे न थे। अरनी आजीविका अत्रिन करन क लिए उहोंने कमप्य गृहस्य जीवन बताया, लेकिन उमे ही मर

कुछ नहीं समझ बैठ । उन्होंने सौकिक और पारसोकिक जीवन में प्रदभुत सतुसन स्थापित किया हुआ था । इसीलिए कबीर को अपनी माँ के उमाहनों का धिकार बनना पड़ा था लेकिन मायात्मक आवेश में उसने अपनी बिचारधारा का त्याग नहीं किया था, यही उसके व्यक्तित्व की महानता थी । बस्तुतः जहाँ एक ओर इन मतों ने माया-सिद्ध हो धन-संप्रह का विरोध किया था वहाँ धर्म-प्य-जीवन का भी उतनी ही शक्ति-पूर्वक विरोध किया था । इसी प्रकार गृहस्थ में सिद्ध गृहस्थियों और पन्थानबादी माधुयों—दोनों का ही उन्होंने विरोध किया था । सच पूछा जावे तो इसी से उनके 'सहज-यय का निर्माण हुआ है । प्रकृति के स्वामाबिक नियमों को उन्होंने सहज रूप में अपनाया और क्रियात्मक जीवन के माध्यम से जन-समाज को अपने नाम का संदेश भी दिया ।

बहु युग धर्मविरोधों का युग था । ज्ञानियों के दुष्क-ज्ञान ने उनसे धर्मकार को अवश्य जागृत किया था पर उनका बौद्धिक संतोष न कर सका था । सतों ने ज्ञानाधारित सत्यों को वहीं तक अपनाया जहाँ तक वे जीवन बौद्धिक न बनाने वाले सिद्ध हुए । ज्ञान को अपनाए बिना उसकी बात करने वालों को उन्होंने धिकारा है । इसीलिए वेदों इत्यादि पुस्तकी बिद्या को मिन्दा नहीं की, अपितु उसे समझे बिना अपनाने का राग धमापने वालों को धाड़ हाथों लिया है । उनकी कृतियों में कहीं कहीं पुस्तकी बिद्या का विरोध भी प्रतीत होता है उससे भी मूस भाव उसके ज्ञान को न अपनाये वालों का ही विरोध है । अनुभूत्याधारित ज्ञान को उन्होंने सर्वत्र ही प्रथम दिया है ।

जनसमाज में विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से प्रसरित होने वाली भक्ति में उन्होंने भाव का प्रभाव पाया। इसी लिए भक्ति के बाह्य आवरण घपने परम उत्कृष्ट पर पहुँच गए, परन्तु उसकी आन्तरिक-शक्ति क्षीण होती गई। मन्तों ने भाव-हीन आचरणों और आह्वयों का जी नर कर विरोध किया। मूर्ति-पूजा करने वालों का अन्तर में बड़ी मूर्ति से परिचय कराया मन्दिर जाने वालों का मन-मन्दिर की याद दिसाई 'कर का मनषा फेरम वालों को 'मन का मनका भा पकड़ाया तीर्थों में भ्रमण करने वालों का सुरगुरु रूपी तीर्थ के दर्शन कराये, गंगा-स्नान करने वालों का अन्न स्नान का पाठ पढ़ाया, अन्न करने वालों का वास्तविक व्रत का महत्त्व बताया, इन आवरणों के माध्यम में भक्ति घपना में प्रयत्नशीला को भक्ति के मूल-तत्त्व भाव रूप 'माम का बरदान दिया। इस प्रकार भक्ति का जो इन्होंने विरोध नहीं किया अपितु उसे बहिष्कृत रूप प्रदान कर महत्त्व और स्वाभाविक बना दिया ताकि उन-सामान्य भाव रूप हृदय में—विना किमा आह्वय के भी उस घपना में।

योगियों की जटिल दृष्टि शिष्यों में फँस कर घाम में भी बिबट रूप धारण कर लिया था। मन्तों ने इस अटिम्ता का विरोध कर उस महत्त्व बनाया। जहाँ तक स्वाम्भ-गद्या का सम्बन्ध है उन्होंने मगहन म्यम्य दृष्टि का निर्मित करने का संदेश दिया है। सखि बिरुत माधमाओं के माध्यम से उस घना-हृदय में बह-अहिष्णु बनाने का गुण का विरोध किया है। कबम दह या कष्ट दकर योगिक शिष्याओं के माध्यम में बह शक्ति या बह-स्नान से उद्दान अद्यतनि प्रकट की है।



इस प्रकार स्वल्प ब धीर्घ जीवन व्यतीत करने की दृष्टि से उन्होंने देह का महत्व स्वीकार किया है लेकिन सहज मांग का त्याग करके नहीं ।

सब पूछा जावे, तो उन्होंने एक बार फिर ज्ञान, भक्ति और कम की एकांगिता का विरोध कर—तीनों का उचित समाहार कर—समन्वित जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । इस प्रकार तीनों के विकारों से तंग थाकर घम पराङ्मुख होती हुई जनता को एक बार फिर घमोंगमुख किया । इस कार्य के लिए उनका सब से बड़ा सहायक हुआ सत्गुरु । सत्तों ने इस बात को समझ लिया था कि अज्ञानी गुरुओं ने ही मोक्षी वाली जनता को पथ भ्रष्ट किया हुआ है इसीलिए उन्होंने सत्गुरु की बड़ी कठिनी कसीनी रख दी लेकिन इसके साथ साथ उसका महत्व भी अत्यधिक बढ़ा दिया । सत्गुरु वहाँ हो सकता है जिसने सुद मार्ग पा लिया है और जो संसार से ऊपर उठ चुका है, जब जिसे केवल लोक-कल्याण की भयन है । इसीलिए उसका महत्व साध्य से भी अधिक हो गया, क्योंकि इस साधन के बिना साध्य की प्राप्ति सम्भव नहीं । सत्गुरु ने समाज को सत्कर्म का महत्व बताया । बिना सत्कर्मों के मानव का बहु धरातल ही नहीं बन पाता, जहाँ वह पारलौकिक जीवन की बात सोच सके । सत्कर्मों के माध्यम से मानव इष्टता अधिस्त्य-वर्क बन जाता है, कि 'नाम' प्राप्त करने का अधिकारी बन जावे । सत्गुरु का सबसे बड़ा बरदान 'नाम' है । सासारिक जीव इस नाम के सहारे ही उस दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ता है, क्योंकि मूर्ति आदि उसके प्रतीक-स्वरूप और कोई साधन जीव के पास

नहीं है। इस 'नाम' में अनन्यता, एकाग्रता और अनवरत तन्मत्तता मन्त्र को सफलता प्रदान करने वाले विनिष्ट तत्त्व हैं। सन्तान नाम का इतना महत्त्व दिया इसी से इनके नाम का कइयों ने नाम-मात्र तक की सन्ता प्रदान कर दी है। नाम काई भी हा उसका उतना महत्त्व नहीं जितना उसमें अन्तर्हित भाव का। और नाम तो उस भाव की ही आगूत रखने का साधन मात्र है सप पूछा जावे तो सत्गुरु और नाम को अज्ञित नहीं किया जा सकता यह तो भगवत्कृपा से ही प्राप्त हो सकता है और यह भगवत्कृपा कब हो, यह काई नहीं जान सकता। व्यक्ति भाव परायण होकर सत्कर्म करता चल, यदि उसके विश्वास में शक होगा निश्चय में दुःखता हागी भक्ति में अनन्यता हाती, तो भगवत्कृपा भी कभी न कभी हा ही जावेगी। और जब भगवत्कृपा हा गई तो कोई समस्या खेप नहीं रह जाती। सन्तों न एक स्वर न भगवत्कृपा को ही सचप्रधान साधन स्वीकार किया है। सत्कर्म सत्संगति सत्गुरु आदि इसके लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण कर सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं।

अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने धार्मिक चमत्कारमयी वाणी का आश्रय नहीं लिया, अपितु भाषा की सरलता स्पष्टता और शक्तिमत्ता ने ही उनकी शैली को साहित्यिकता प्रदान की है। न उनके मन में, न उनकी विचारधारा में किसी प्रकार का दुराव द्विपाव था, और न ही अभिव्यक्ति में कोई बकता। हा उनके सोप-मादे परन्तु सदास्त व्यंजनों में धादम्बरबादियों को तिमपिता देने की अद्भुत सामर्थ्य थी, यही उनकी अभिव्यक्ति की शक्ति है। इसका

यह मतलब नहीं कि उनकी वाणी में मझता न हो । जगवान के सम्मुख उनकी विनयिता की हृद हाती है - उनका अपना तो अस्तित्व ही नहीं रहता । वस्तुतः उनकी अभिव्यक्ति को उनकी विचारधारा नहीं भावना का बसती रही है, इसी से वह सहज स्वभाविक और प्रभावोत्पादक बन सकी है । सीधा जन-मन के हृदय को प्रभावित करती है, इससे बढ़कर उसकी निश्चलता का प्रमाण ही भी क्या सकता है ।

सन्त भावना किसी सम्प्रदाय विशेष में घायल नहीं हुई इसीलिए अन्याय सम्प्रदायों के माध्यम से इस एक ही भावना का विकास होता रहा और हा रहा है । यह मानवीय धरातल पर विकसित हुई है । किसी भी धर्म, कर्म, धर्म और जाति के बग का व्यक्ति इसे अपनाया हो अपना सकता था और जब चाहे इसका त्याग भी कर सकता था । यहाँ किसी प्रकार का बन्धन न था, जाति या वर्ग बहिष्कृत वर्गों की आवेगकता न थी । सन्तों की मान्यताओं का धरातल बड़ा व्यापक था । वस्तुतः उनकी मान्यताओं की आधार-भूमि एक ही थी, अतः उन पर जिस त्रिआत्मक जीवन या जीवन-दशन का विकास हुआ उससे मूल-तत्त्वों में कोई अंतर न था । इस भावना के स्थापित का कारण इसकी सहज स्वभाविकता है । इतिम क्रिया कर्मापों को इसमें स्थान न दे कर सन्तों ने इसे बिचिष्ट नहीं होने दिया । बाह्य आवरणों, आडम्बरों या कर्मकाण्डों का अभाव ने इसे मात्र प्रधान बना रहने में सहायता दी । इस प्रकार अकीर्णता के आधार-स्तम्भों के अभाव में इसे कम विरोध सहना पड़ा और यह सामान्य धरातल पर विकसित होती गई । व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता ने इसे और भी

दासिता प्रदान की। समाज के किसी भी वर्ग से आने वाले परिवर्तन व्यक्ति न इसे हँस कर घपनाया, यदि नहीं भी घपनाया तो कम से कम इसका विरोध नहीं किया। इस प्रकार प्रत्येक युग के, सभी वर्गों के परिवर्तन व्यक्तियों का ध्यान पाकर यह सशक्त होती गई।

वैज्ञानिक प्रगति और राजनीतिक घटनाएँ के इस युग में आज राजनीतियों ने 'विश्व-सरकार' की आवश्यकता अनुभव की है। यह समस्या का बहुत ऊपरी समाधान है। यदि और गहराई में जाकर मानव-मानव को निकट आने का प्रयत्न किया जावे, तो वह 'मानव धर्म' और कुछ नहीं, इन मन्तों की सामान्य मान्यताओं का ही विशिष्ट एवं परिष्कृत रूप है। मन्तों की मान्यताओं का महत्त्व इसी से स्पष्ट है। धर्म धर्म का उद्धार करने वाले, मानव-मानव को एकता का संदेश देने वाले जीवन में प्रतीकिक रूप का मंचार करने वाले, विश्व में शांति का प्रसार करने वाले मन्तों और उनकी मान्यताओं का यह सक्षिप्त-सा लेसा-बोसा है।



यह मतभव नहीं कि उनकी वाणी में नम्रता न हो। नगवान के सम्मुख उनकी विनयिता की हृद् हाती है—उनका अपना तो अस्वित्त्व ही नहीं रहता। वस्तुतः उनकी अभिव्यक्ति को उनकी विचारधारा नहीं भावनागत जानती रही है, इसी से वह सहज स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक बन सकी है। सीमा जम-मन के हृदय को प्रभावित करती है, इससे बढ़कर उसकी निस्स्वसता का प्रमाण हो भी गया सकता है।

सन्त-भावना किसी सम्प्रदाय-विशेष में आवृत्त नहीं हुई इसीलिए अन्यान्य सम्प्रदायों के माध्यम से इस एक ही भावना का विकास होता रहा और हो रहा है। यह मानवीय घरातस पर विकसित हुई है। किसी भी धर्म, कर्म, धर्म और जाति के बग का व्यक्ति इसे अपनाया हो अपना सकता था और जब चाह इसका त्याग भी कर सकता था। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन न था, जाति या बग बहिष्कृत करने की आवश्यकता नहीं थी। सन्तों की मान्यताओं का घरातस बड़ा व्यापक था। वस्तुतः उनकी मान्यताओं की आधारभूमि एक ही थी, यत उन पर जिस प्रियात्मक जीवन या जीवन-दर्शन का विकास हुआ उसके मूल-तत्त्वों में कोई अन्तर न था। इस भावना के स्थायित्व का कारण इसकी सहज स्वाभाविकता है। कृत्रिम क्रिया कर्मों को इसमें त्याग न दे कर सन्तों ने इसे विधिष्ठ नहीं होने दिया। बाह्य आवरणों, आडम्बरों या कर्मकाण्डों का प्रभाव ने इसे भाव प्रधान बना रहने में सहायता दी। इस प्रकार संकीर्णता के आधार-स्तम्भों के प्रभाव में इसे कम विरोध सहना पड़ा और यह सामान्य घरातस पर विकसित होती गई। वैयक्तिक चारित्रिक दुर्बलता ने इसे और भी



यह मतसब नहीं कि उनकी वाणी में नम्रता न हो। नगवान के सम्मुख उनकी बिगड़िता की हड़ हाती है—उनका अपना तो अस्तित्व ही नहीं रहता। वस्तुतः उनकी अभिव्यक्ति को उनकी बिचारधारा नहीं भावपाग डामती रही है, इसी से वह सहज स्वामाबिक और प्रभावोत्पादक बन सकी है। सीधा जन-जन के हृदय को प्रभावित करती है, इससे बढ़कर उसकी निरछमता का प्रमाण हो भी क्या सकता है।

सन्त भावना किसी सम्प्रदाय विशेष में बाधित नहीं हुई इसीलिए अग्न्यान्व सम्प्रदायों के माध्यम से इस एक ही भावना का विकास होता रहा और हा रहा है। यह मानवीय घरातल पर बिकसित हुई है। किसी भी धर्म, कर्म, धर्म और जाति के षग का व्यक्ति इसे अनामास हो अपना सकता था और जब चाहे इसका त्याग भी कर सकता था। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन न था, जाति या षग यहिच्छुत करने की आवश्यकता न थी। सन्तों की मान्यताओं का घरातल बड़ा व्यापक था। वस्तुतः उनकी मान्यताओं की आधारभूमि एक ही थी, अतः उन पर जिस क्रियात्मक जीवन या जीवन-दशन का विकास हुआ उसके मूल-सत्त्वों में कोई अन्तर न आया। इस भावना के स्थायित्व का कारण इसकी सहज स्वामाबिकता है। इतिम क्रिया कर्मापों को इसमें स्थान न दे कर सन्तों ने इसे बिशिष्ट नहीं होने दिया। बाह्य आवरणों, आडम्बरों या कर्मकाण्डों ने अभाव ने इसे भाव प्रधान बना रहने में सहायता दी। इस प्रकार संकीणता के आधार-स्तम्भों के अभाव में इसे कम बिरोध सहना पड़ा और यह सामान्य घरातल पर बिकसित होती गई। वैयक्तिक चारित्रिक दुकृता ने इसे और भी

शक्ति प्रदान की। समाज के किसी भी वर्ग से घाने वाले  
 चरित्रवान् व्यक्ति ने इसे हँस कर भपनाया, यदि नहीं  
 भी भपनाया तो कम से कम इसका विरोध नहीं किया। इस  
 प्रकार प्रत्येक युग के, सभी वर्गों के चरित्रवान् व्यक्तियों का  
 धाय्य पाकर यह सशक्त होती गई।

वैज्ञानिक प्रगति और राजनीतिक भ्रष्टाचि के इस युग में  
 मानव राजनीतियों ने 'विश्व-सरकार' की आवश्यकता अनुभव  
 की है। यह समस्या का बहुत ऊपरी समाधान है। यदि और  
 गहराई में जाकर मानव-मानव को निकट लाने का प्रयत्न  
 किया जावे, तो वह 'मानव भ्रम' और कृष्ण नहीं इन मन्तों की  
 मामाभ्य माम्यताओं का ही विकसित एवं परिष्कृत रूप है।  
 मन्तों की माम्यताओं का महत्त्व इसी से स्पष्ट है। धरा धाम  
 का उद्धार करने वाले, मानव-मानव को एकता का सन्देश  
 देने वाले, जीवन में धलीकिक-रस का सञ्चार करने वाले,  
 विश्व में शान्ति का प्रसार करने वाले सन्ता और उनकी  
 माम्यताओं का यह सक्षिप्त-सा लेखा-आका है।

